मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७०
फरवरी ०७

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुस्मृतः ।
विकल्पं यस्तु कुर्वीत स नरो गुरुतल्पगः ॥
(शिवगीता)

असंग अलिंग अक्षय अनंत
शिवस्वरूप अति शांत ।
अनुपम अनादि अद्वितीय है
ज्ञानवानों का प्रांत ॥

महाशिवरात्रि :
१६ फरवरी

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

दुबई (यूएई) में 'व्यसनमुक्ति अभियान' के अंतर्गत विडियो सत्संग तथा
बुरहानपुर (म.प्र.) से सूरत आश्रम (गुज.) तक (अंतर : ४१२ कि.मी.) पदयात्रा।

भाण्डुप (मुंबई) समिति द्वारा जव्हार जि. थाने (महा.) क्षेत्र में भोजन, वस्त्र, मिठाई वितरण तथा
बलांगीर (उड़ीसा) समिति द्वारा तरमा गाँव के मूक-बधिर बच्चों में अनाज-वितरण।

मलाजखंड जि. बालाघाट (म.प्र.) तथा बैकुण्ठपुर (छ.ग.) में निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर।

देगलूर जि. नांदेड़ (महा.) में 'बाल संस्कार' केन्द्र द्वारा महामृत्युंजय मंत्र अनुष्ठान
तथा हरदा आश्रम (म.प्र.) में सामूहिक हवन।

वर्ष : १७ अंक : १७० फरवरी २००७ माघ-फाल्गुन वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६/-

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

इस अंक में

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US$ 20
(२) द्विवार्षिक	: US$40
(३) पंचवार्षिक	: US$ 80
(४) आजीवन	: US$200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US$ 20	US$ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०३४६६.
e-mail : ashramindia@ashram.org
ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

उत्साही बनो

उत्साहसमन्वितः... कर्ता सात्त्विक उच्यते ।

'उत्साह से युक्त कर्ता सात्त्विक कहा जाता है ।' (श्रीमद्भगवद्गीता : १८.२६)

● **पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से**

मनुष्य का जीवन हो या किसी भी जीव का जीवन हो, कुदरत ने ऐसा लचीला बनाया है कि वह जितनी चाहे उतनी उन्नति कर सकता है ।

जो काम करें उत्साह से करें, तत्परता से करें; लापरवाही न बरतें । उत्साह से काम करने से योग्यता बढ़ती है, आनंद आता है । उत्साहहीन होकर काम करने से कार्य बोझा बन जाता है ।

अपने दैनिक कार्य में उत्साह रखें । कार्य का परिणाम चाहे कैसा भी आये, उत्साह न छोड़ें और लापरवाही न करें; जीवन में धैर्य धारें । उत्साह का मतलब है सफलता, उन्नति, लाभ और आदर के समय चित्त में काम करने का जैसा जोश, तत्परता, बल बना रहता है, ठीक ऐसा ही प्रतिकूल परिस्थिति में भी चित्त में बना रहे । यही वास्तविक उत्साह है ।

जरा-जरा बात में दुःखी-सुखी हो जाना, जरा-जरा बात में भयभीत हो जाना, लापरवाही करना - यह बड़े-में-बड़ा दुर्भाग्य है । श्रीकृष्ण के दर्शन होने पर भी अर्जुन बेचारा परेशान है, किंकर्तव्यविमूढ़ है । जब भगवान का प्यारा अर्जुन भगवान का सान्निध्य पाकर भी विघ्न-बाधा और परेशानियों से जूझ रहा है तो कलियुग के मनुष्य को परेशानी आये यह स्वाभाविक है ।

मनुष्य जहाँ भी जाय, जिस वातावरण में - जिस परिस्थिति में जाय, उसमें अपनेको सफल बनाने का उत्साह होना चाहिए । जैसे कुएँ की दीवार में पीपल का पौधा पनपता है । वह कहाँ से प्रकाश लाता है ? कहाँ से पानी और मिट्टी लाता है ? उसमें छुपी हुई जीवनीशक्ति होती है । उससे वह सब कुछ खींच लेता है, जड़ें पसार लेता है, बढ़ता जाता है, पनपता जाता है और वृक्ष बन जाता है । यहाँ तक कि पक्षियों को अपने फल व निवास और पथिकों को आरोग्यदायिनी शीतल छाया देने का अवसर पा लेता है ।

ठीक ऐसे ही पहाड़ पर गिरे बीज से पौधा पनपता है, किसी प्रकार वहीं अपनी जड़ें पसारता है और वृक्ष हो जाता है । उसी प्रकार जहाँ जीव को रहना-सहना हो, जहाँ उन्नति करनी हो, वहीं अपने पैर जमाकर उत्साह से आजीविका का आयोजन कर साधन-भजन का सहारा लेते हुए अपनेको उन्नत करे । 'क्या करें जमाना खराब है, यह ऐसा है-यह वैसा है...' - इस प्रकार अपने भाग्य को या किसीको कोसकर अपने जीवन को नष्ट-भ्रष्ट न करे ।

कभी विघ्न-बाधा आती है तो रोने लग जाते हैं : 'अरेऽऽऽ मैं तो मर गया... मेरा क्या होगा ?' हताश-निराश, विघ्न-बाधा के पराधीन होकर कहने लगते हैं कि 'दुनियां बड़ी खराब है, वातावरण प्रतिकूल हो गया है ।'

सारी विघ्न-बाधाएँ, पाप-ताप दुःखदायी दिखते हैं लेकिन अंदर से मिश्री के समान होते हैं । ठंडी-गर्मी-बारिश आदि को देख के घबरा मत। प्रतिकूलता को देख के घबरा मत । बीते हुए सुख-दुःख की याद से अभी अपनेको परेशान मत कर। अपने जीवन को उत्साह से, आनंद से चमका दे।

गम की अँधेरी रात में, दिल को न बेकरार कर ।
सुबह जरूर आयेगी, सुबह का इंतजार कर ॥

कैसी भी परिस्थिति आये उसका सदुपयोग करें । कैसी भी अंधकारमय रात्रि हो गुजर जायेगी ।

बीमारी से गुजर रहे हों और धैर्य छोड़ दें तो गड़बड़ हो जायेगी । 'क्या करें, अब तो कर लो आत्महत्या ! खा लो एक साथ ढेर सारी नींद की गोलियाँ !' - ऐसा सोचोगे तो गड़बड़ हो जायेगी । इसलिए जीवन में 'गीता' का यह सद्गुण होना चाहिए ।

मनुष्य का जीवन हो या किसी भी जीव का जीवन हो, कुदरत ने ऐसा लचीला बनाया है कि वह जितनी चाहे उतनी उन्नति कर सकता है । कठिन-से-कठिन परिस्थिति से जूझकर, दुःख-मुसीबतों और विघ्न-बाधाओं के सिर पर पैर रख के परम पद तक पहुँच सकता है। बस, उस योग्यता का पता चल जाय, उस योग्यता पर विश्वास हो जाय ।

'अरे, अरे... उन्होंने अन्याय कर दिया। यह हो गया - वह हो गया...' - ऐसी चिंता से तुम्हारा मन-बुद्धि कमजोर हो जायेगा । कई लोग सोचते हैं : 'दुनिया बड़ी खराब है ।' खराब है तो है लेकिन हम अच्छाई का ही प्रचार करें। खराब व्यक्ति खराबी नहीं छोड़ता तो अच्छा व्यक्ति अच्छाई छोड़ के क्यों भागे ? अच्छा व्यक्ति यदि अच्छाई में दृढ़ रहता है तो खराब व्यक्ति में छुपा हुआ अच्छाई का अंश जाग उठेगा, डरना किसलिए ?

उत्साह से भजन करें । उत्साह से काम करें । जो उत्साह से भजन नहीं करते, उनके व्यवहार में भी उत्साह नहीं होता । दो घंटे रोज नियम से भजन करें तो बाकी के बाईस घंटे भजन का भाव मन में बना रहता है । जिसका उत्साह टूटा, उसका जीवन पूरा हो गया । उत्साहहीन जीवन व्यर्थ है ।

उत्साह लाने का उपाय :

अगर जीवन उत्साहहीन हो रहा हो तो नित्य यह प्रयोग करें : शरीर को खूब खींचें, इतना खींचें कि रग-रग में स्फूर्ति आ जाय। फिर शरीर को ढीला छोड़ दें और दृढ़ भावना करें कि 'मुझमें परमात्मा की शक्ति, परमात्मा का आनंद, परमात्मा का उत्साह-सामर्थ्य, परमात्मा की समता भरी है । हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... ईश्वर मेरे साथ हैं, ईश्वर के सद्गुण मेरे साथ हैं... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ शांति... हरि ॐ...' कुछ मिनटों तक शवासन में पड़े रहें।

शुद्ध हवा में अनुलोम-विलोम प्राणायाम करके १० बार श्वास लें- छोड़ें । फिर श्वास लेकर कंठ पर दबाव पड़े इस प्रकार सिर को आगे-पीछे हिलायें। ऐसा २ बार करें । जहाँ रहते हैं वहाँ थोड़ा-सा कपूर छिड़क दें । गृहदोष-वास्तुदोष निवारक प्रसाद जो कि आश्रम से निःशुल्क मिलता है, वह अपने कमरे व कार्यालय में रख दें। उसको छूकर ऋणायन बनी हुई हवा और धनात्मक ऊर्जा लाभदायी होगी । पीपल का स्पर्श और घर में तुलसी लगाना भी आरोग्य, बल व उत्साह वर्धक है। ■

'यमस्मृति' में गाय को सर्व पापों का नाश करनेवाला बताया गया है :

शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात् कृष्णाया गोशकृत्तथा ।
ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेताया दधि चोच्यते ॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ।

'सफेद रंग की गाय का दही व मूत्र , काली रंग की गाय का गोबर, ताम्र वर्ण की गाय का दूध और कपिला गाय का घृत सर्व पापों का नाश करनेवाला होता है।' **(यमस्मृति : ७१-७२)**

तू मेरा हो जाय तो मैं होऊँ तेरा

● पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

अनन्य भाव से ईश्वर का चिंतन करनेवाले को ईश्वर के सिवा अन्य कुछ भी रुचता नहीं है । उसका दिल कहीं रुकता नहीं है । यदि वह भौतिक पदार्थ एवं संसार व्यवहार के प्रति आकर्षित होकर बहिर्मुख होता है, तब भी उनके फीकेपन को महसूस करके फिर से अंतर्मुख हो जाता है ।

समुद्र की अपार जलराशि पर एक जहाज जा रहा है । आस-पास कई मील तक पानी-ही-पानी है । जमीन का कहीं नामोनिशान नहीं है । इस जहाज के मस्तूल की चोटी पर एक पक्षी बैठा है । उसके लिए विश्राम पाने का वही एकमात्र सहारा है । वह थोड़ी देर इधर-उधर उड़ लेता है किंतु अंत में उसे उसी जहाज पर वापस आना पड़ता है । वह जहाज ही उस पक्षी के लिए विश्रांति का अनन्य स्थान है । ठीक ऐसे ही ईश्वर के अनन्य भक्त के लिए भी ईश्वर ही एकमात्र स्थान हैं, जहाँ उसे शुद्ध सुख, विश्रांति मिलती है । संसार के सुखों के पीछे भटकने की व्यर्थता उसे समझ में आ गयी है । मानो अब उसे धधकती हुई मरुभूमि में मीठे जल का स्रोत मिल गया है ।

भक्तिमार्ग पर अग्रसर हुआ भक्त तो अधिकाधिक ईश्वर की ओर खिंचता चला जाता है । अन्य वस्तु एवं व्यक्तियों से उसके संबंध छूटने लगते हैं । वह ईश्वर-स्मरण में, ईश्वरीय मस्ती में ही संलग्न रहता है । जिससे ईश्वर भी अपने दुलारे भक्त के और निकट आने लगते हैं । ऐसे भक्त की सम्पूर्ण जिम्मेदारी भगवान उठा लेते हैं । उसका योगक्षेम ईश्वर स्वयं वहन करते हैं । स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

'जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरंतर चिंतन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं, उन नित्य-निरंतर मेरा चिंतन करनेवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : ९.२२)**

उस भक्त के लिए जगत में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसकी इच्छा करने पर वह उसके सामने उचित समय पर उपस्थित न हो जाय । जिस समय जो आवश्यकता हो भगवान उसे पूर्ण करते हैं ।

हिमालय के घोर अरण्य में स्वामी रामतीर्थ को 'कठोपनिषद्' पढ़ने की इच्छा हुई । अब इस निर्जन जंगल में वह ग्रंथ कहाँ से लायें ? कुछ ही देर में एक व्यक्ति वहाँ आया और बोला : ''स्वामीजी ! यह ग्रंथ देखिये न ! क्या आपको काम में आ सके ऐसा है ? मुझे इसका कुछ उपयोग नहीं है, चाहिए तो आप रख लीजिये ।''

स्वामीजी ने ग्रंथ हाथ में लिया तो देखा कि 'कठोपनिषद्' ! कैसा भक्तवत्सल है मेरा प्रियतम ! मेरे साधनाकाल में भी ईश्वरकृपा की ऐसी लीलाएँ होती थीं ।

ईश्वर के लिए ज्यों ही अनन्य भाव उत्पन्न होता है कि तुरंत ईश्वर भक्त के सारे काम उठा लेते हैं । भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन की जिम्मेदारी तो सिर पर ली ही, साथ में अर्जुन के घोड़ों की भी जिम्मेदारी स्वीकार की ।

ऐसे परमात्मा के साथ तार जुड़ जाने के बाद भक्त अन्य कोई इच्छा ही नहीं करता । जीवन-यापन की सामग्री तो पर्याप्त मात्रा में उसके पास सहज में खिंचकर आ जाती है । ऐसे भक्त को भगवान के बिना नहीं चलता और भगवान को भक्त के बिना नहीं चलता, जैसे माँ को बालक चाहिए और बालक को माँ चाहिए । भक्त के लिए ईश्वर सब कुछ लुटाने को तैयार रहते हैं ।

हे साधक ! तुम भी परम पुरुषार्थ के मार्ग पर कूद पड़ो । भूतकाल का रंज और भावी की चिंता छोड़ दो । परमात्मा के प्रति अनन्य भाव विकसित करो । फिर देखो कि इस घोर कलिकाल में भी तुम्हारे अन्न, वस्त्र व आवास की कैसी व्यवस्था होती है ! वर्तमान के लिए तो साधन मिलते ही हैं, भविष्य के लिए भी साधनों की व्यवस्था स्वतः होने

लगती है । अकल्पनीय रूप से योग्य वस्तु व व्यक्तियों से मुलाकात होने लगती है । केवल भौतिक आवश्यकताएँ नहीं, आध्यात्मिक आवश्यकताएँ भी पोषित होने लगती हैं ।

यदि अनन्यता में कभी कमी हुई तो तुरंत फटका भी लगता है । हनुमानजी एक ही छलाँग में समुद्र पार कर गये थे । एक बार वे भूल गये कि भगवान राम के प्रति अनन्य भक्ति के कारण उनकी इच्छाशक्ति में अनुपम सामर्थ्य प्रकट हुआ था । अतः उनको अपने कर्तृत्व पर गर्व हो गया । उस समय कच्ची उम्र के दो बच्चों लव और कुश ने हनुमानजी को उनकी ही पूँछ से बाँध लिया और सीता माता के सामने ले गये । बोले : ''माँ ! यह बन्दर बहुत उत्पात करता है इसलिए बाँध दिया है।''

ईश्वर तो **कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं** समर्थ हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं । किये हुए को मिथ्या भी कर सकते हैं । उनकी कृपादृष्टि से गूँगा भी बोलने लगता है, पंगु भी मेरु पर्वत पार कर लेता है ।

जीवन के बोझे को फेंककर जीवन को हलके फूल जैसा बनाना हो तो कहीं-न-कहीं अनन्य भाव विकसित करना ही पड़ता है । वेदांत के सत्संग से तैयार हुआ साधक सच्चिदानंद परमात्मा में अनन्य भाव रखता है, जबकि अन्य लोग किसी-न-किसी देवी-देवता में अनन्य भाव स्थापित करते हैं । ईश्वर को तुम द्वैतभाव से भजो या अद्वैतभाव से, अपनी भावना के अनुरूप फल होगा । प्रारंभ में मैं पीपल की पूजा करता था । ऐसा वातावरण भी मिला था और आवश्यक सामग्री भी मिल जाती थी । भीतर से इतना प्रेम छलकता कि पीपल को आलिंगन करता था । कई वर्षों तक भक्तिभाव का यह सिलसिला चला । जिस साधन में तुम्हारा भाव हो उस साधन में ईश्वर मिठास भर देते हैं । अपना भाव हो, दृढ़ निष्ठा हो यह महत्त्व की बात है।

यदि निष्ठा दृढ़ हो तो कठिन-से-कठिन कार्य भी पूर्ण हो सकता है । यदि इसी जन्म में परमात्मा के समग्र स्वरूप को पाने का दृढ़ संकल्प हो, अनन्य भाव हो तो वह भी पूर्ण हो जाता है । परंतु थोड़े भी ढीले हुए अथवा दूसरे जन्म में पायेंगे ऐसे विकल्प को मन में स्थान दिया तो फिर कितने जन्मों की परंपरा चलेगी इसकी तो कल्पना नहीं कर सकते । सबसे ऊपरवाली सीढ़ी से यदि लोटा गिरता है और एक सीढ़ी भी लुढ़कता है तो फिर एक के बाद एक सीढ़ी पार करता हुआ ठं ठं ठं ठं... ऐसी आवाज करता हुआ बिल्कुल नीचे ही आ जाता है ।

अपने जीवन को ऐसा बनाओ कि तुम्हें नश्वर के लिए दौड़ना न पड़े, नश्वर तुम्हारे पास दौड़ता आये । तुम सच्चिदानंदस्वरूप हो । बस, अपने उस शाश्वत स्वरूप को जान लो तो जीवन में सारे कर्तव्य पूरे हो जायेंगे । ■

मंत्र मंजूषा

शीत से उत्पन्न रोगों में 'चन्द्र मंत्र' का प्रयोग और गर्मी से उत्पन्न कायज रोगों में अथवा बुद्धि की विकलता में 'सूर्य मंत्र' का जप सिद्धि प्रदान करता है।

चन्द्र मंत्र :

ॐ चन्द्रो मे चान्द्रमसान् रोगानपहरतु । औषधिनाथाय वै नमः । ॐ स्वात्मसम्बन्धिनः सर्वतः सर्वरोगान् शमय शमय तत्रैव पातय पातय । शक्तिं चोद्भावयोद्भावय ॥

किसी पर्व अथवा पुण्य दिवस में केवल दो सौ बार जप कर लेने से इस 'मंत्र' की सिद्धि हो जाती है।

सूर्य मंत्र :

'ॐ नमोऽस्तु दिवाकराय अग्नितत्त्व-प्रवर्धकाय शमय शमय शोषय शोषय अग्नितत्त्वं समतां कुरु कुरु ॐ।'

जब कोई व्यक्ति दुर्बाधापीड़ित हो, दृष्टि रोग से ग्रस्त हो, अग्नि तत्त्व के वैषम्य से पीड़ित हो अथवा बुद्धिवैकल्य (उन्माद, पागलपन) से पीड़ित हो, शरीर में जलन और गर्मी का अनुभव करे, तब इस मंत्र का प्रयोग होता है। अमावस्या के दिन केवल ४० बार इस मंत्र का जप कर लेने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। मंत्रसिद्धि के अनंतर मंत्र से जल को अभिमन्त्रित करके रोगी को पिला देना चाहिए, सब रोगों में लाभ होगा । ■

विश्वमानव की मंगलकामना से भरे
पूज्य बापूजी का परम हितकारी संदेश पढ़ें-पढ़ायें
'वेलेन्टाइन डे नहीं मातृ-पितृ दिवस मनायें युवा'

यौन-जीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मूल्यों का त्याग करनेवाले देशों की चारित्रिक सम्पदा नष्ट होने का मुख्य कारण ऐसे 'वेलेन्टाइन डे' हैं, जो लोगों को अनैतिक जीवन जीने को प्रोत्साहित करते हैं । इससे उन देशों का अधःपतन हुआ है । अमेरिका में ७% बच्चे १३ वर्ष की उम्र के पहले ही यौन संबंध कर लेते हैं । ८५% लड़के और ७७% लड़कियाँ १९ वर्ष के पहले ही यौन संबंध कर लेते हैं । इससे जो समस्याएँ पैदा हुईं, उनको मिटाने के लिए वहाँ की सरकारों को स्कूलों में 'केवल संयम' अभियानों पर करोड़ों डॉलर खर्च करने पर भी सफलता नहीं मिलती । अतः भारत जैसे देशों को अपने परंपरागत नैतिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए ऐसे 'वेलेन्टाइन डे' का बहिष्कार करना चाहिए।

प्रेमदिवस जरूर मनायें लेकिन संयम और सच्चा विकास प्रेमदिवस में लाना चाहिए। युवक-युवती मिलेंगे तो विनाश-दिवस बनेगा।

तुम भारत के लाल और भारत की लालियाँ (बेटियाँ) हो। प्रेमदिवस मनाओ, अपने माता-पिता का सम्मान करो और माता-पिता बच्चों को स्नेह करें। करोगे न बेटे ऐसा !

इस दिन बच्चे-बच्चियाँ माता-पिता का आदर-पूजन करें और उनके सिर पर पुष्प रखें, प्रणाम करें तथा माता-पिता अपनी संतानों को प्रेम करें। संतान अपने माता-पिता के गले लगें । इससे वास्तविक प्रेम का विकास होगा। बेटे-बेटियाँ माता-पिता में ईश्वरीय अंश देखें और माता-पिता बच्चों में ईश्वरीय अंश देखें।

प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) के नाम पर विनाशकारी कामविकार का विकास हो रहा है, जो आगे चलकर चिड़चिड़ापन, डिप्रेशन, खोखलापन, जल्दी बुढ़ापा और मौत लानेवाला दिवस साबित होगा । अतः भारतवासी इस अंधपरंपरा से सावधान हों ! तुम भारत के लाल और भारत की लालियाँ (बेटियाँ) हो। प्रेमदिवस मनाओ, अपने माता-पिता का सम्मान करो और माता-पिता बच्चों को स्नेह करें। करोगे न बेटे ऐसा ! पाश्चात्य लोग विनाश की ओर जा रहे हैं। वे लोग ऐसे दिवस मनाकर यौन रोगों का घर बन रहे हैं, अशांति की आग में तप रहे हैं। उनकी नकल तो नहीं करोगे ?

'इन्नोसन्टी रिपोर्ट कार्ड' के अनुसार २८ विकसित देशों में हर साल १३ से १९ वर्ष की १२ लाख ५० हजार किशोरियाँ गर्भवती हो जाती हैं । उनमें से ५ लाख गर्भपात कराती हैं और ७ लाख ५० हजार कुँवारी माता बन जाती हैं। अमेरिका में हर साल ४ लाख ९४ हजार अनाथ बच्चे जन्म लेते हैं और ३० लाख किशोर-किशोरियाँ यौन रोगों के शिकार होते हैं ।

यौन संबंध करनेवालों में २५ प्रतिशत किशोर-किशोरियाँ यौन रोगों से पीड़ित हैं । असुरक्षित यौन संबंध करनेवालों में ५० प्रतिशत को गोनोरिया, ३३ प्रतिशत को जैनिटल हर्पिस और एक प्रतिशत को एड्स का रोग होने की संभावना है । एड्स के नये रोगियों में २५ प्रतिशत २२ वर्ष से छोटी उम्र के होते हैं। आज अमेरिका के ३३ प्रतिशत स्कूलों में यौन शिक्षा के अंतर्गत 'केवल संयम' की शिक्षा दी जाती है। इसके लिए अमेरिका ने ४० करोड़ से अधिक डॉलर खर्च किये हैं।

'द हेरिटेज सेन्टर फॉर डेटा एनेलिसिस' की एक रिपोर्ट के अनुसार - सतत डिप्रेशन से ग्रस्त रहनेवाली लड़कियों में साधारण लड़कियों की अपेक्षा यौन संबंध करनेवाली लड़कियों की संख्या तीन गुनी से अधिक है

और आत्महत्या का प्रयास करनेवाली लड़कियों में साधारण लड़कियों की अपेक्षा यौन संबंध करनेवाली लड़कियों की संख्या तीन गुनी है । सतत डिप्रेशन में रहनेवाले लड़कों में साधारण लड़कों की अपेक्षा यौन संबंध करनेवाले लड़कों की संख्या दुगनी से अधिक होती है और आत्महत्या का प्रयास करनेवाले लड़कों में साधारण लड़कों की अपेक्षा यौन संबंध करनेवाले लड़कों की संख्या आठ गुनी अधिक है । यौन संबंध करनेवालों में से ६ प्रतिशत लड़के और १४.३ प्रतिशत लड़कियाँ आत्महत्या करने का प्रयास करती हैं । डॉ. मेग मीकर लिखते हैं : 'किशोर अवस्था में यौन प्रवृत्ति स्वाभाविक ही भावनात्मक उपद्रव और मानसिक क्लेश पैदा करती है । ऐसे अनैतिक यौन संबंध की अनुमति से खोखले संबंध, आत्मग्लानि और तुच्छता की भावना उत्पन्न होती है, जो डिप्रेशन के मुख्य कारण हैं ।'

मेरे प्यारे युवक-युवतियो और उनके माता-पिता ! आप भारतवासी हैं। दूरदृष्टि के धनी ऋषि-मुनियों की संतान हैं। प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) के नाम पर बच्चों, युवान-युवतियों की कमर टूटे, ऐसे दिवस का त्याग करके माता-पिता और संतानो ! प्रभु के नाते एक-दूसरे को प्रेम करके अपने दिल के परमेश्वर को छलकने दें। काम-विकार नहीं, रामरस, प्रभुप्रेम, प्रभुरस...

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

बालिकादेवो भव। कन्यादेवो भव। पुत्रदेवो भव।

प्रेमदिवस वास्तव में सबमें छुपे हुए देव को प्रीति करने का दिवस है। अगर यह बात मानते हो तो ठीक है, नहीं तो पाश्चात्य ढंग से 'वेलेन्टाइन डे' मनाने के परिणाम भोगने पड़ें उससे पहले युवक-युवतियाँ सावधान हो जाओ, बेटे !

देशवासी और विश्ववासी, सबका मंगल हो । भारत के भाई, बहनो ! ऐसा आचरण करो कि मेरे विश्व के भाई, बहनों का भी मंगल हो। उनका अनुकरण आप क्यों करो ? आपका अनुकरण करके वे सद्‌भागी हो जायें। ■

'वेलेन्टाइन डे'

अपनी संस्कृति में चालीस उत्सव-त्यौहार आते हैं,
वे गुलाम हैं अंग्रेजों के जो 'वेलेन्टाइन डे' मनाते हैं।
उनको आदत पड़ गयी है गुलामी की,
स्वभाव की निलामी की।
बेचारे 'हैप्पी' होने को जाते हैं,
पर सदा रोते और गिड़गिड़ाते हैं ।
जो नैतिकता को भुलाते हैं,
वे कितने हलके हो जाते हैं !
आधुनिकता की आँधी में,
तिनके की तरह उड़ जाते हैं।
आतंक की आग में तपते और तपाते हैं,
भौतिकता की भट्ठी में तप मर जाते हैं।
जो शास्त्र-संत सम्मत कर्म नहीं कर पाते हैं,
कर्म के अकाट्य सिद्धांत से वे पुनर्जन्म को पाते हैं।
विषय भोग की वासना में वे इतने नीचे गिर जाते हैं,
कूकर शूकर गर्दभ, अति नीच योनि को जाते हैं।
बलिहारी है अक्ल की कि वे उत्सव खूब मनाते हैं,
'वेलेन्टाइन डे' कह करके जो भोगों को भड़काते हैं।
धन्य-धन्य यह भारतवर्ष जहाँ,
माता-पिता देवस्वरूप माने जाते हैं।
कर पूजा-सत्कार स्नेह से,
माँ-बाप को शीश नवाते हैं ।
धन्य-धन्य हैं वे लाल धरा के,
जो 'स्नेह दिवस' मनाते हैं।
विश्ववंदनीय हे भारत भूमि !
हम तुमको शीश झुकाते हैं।
वे गुलाम हैं अंग्रेजों के जो 'वेलेन्टाइन डे' मनाते हैं।

– साधक जीवन

नौ योगीश्वरों के उपदेश

(गतांक से आगे)

उन्होंने देवताओं की रक्षा के लिए देवासुर संग्राम में दैत्यपतियों का वध किया और विभिन्न मन्वंतरों में अपनी शक्ति से अनेकों कलावतार धारण करके त्रिभुवन की रक्षा की। फिर वामन अवतार ग्रहण करके उन्होंने याचना के बहाने इस पृथ्वी को दैत्यराज बलि से लेकर अदितिनंदन देवताओं को दे दिया। परशुराम अवतार ग्रहण करके उन्होंने ही पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया। परशुरामजी तो हैहयवंश का प्रलय करने के लिए मानो भृगुवंश में अग्नि रूप से ही अवतीर्ण हुए थे। उन्हीं भगवान ने रामावतार में समुद्र पर पुल बाँधा एवं रावण और उसकी राजधानी लंका को मटियामेट कर दिया। उनकी कीर्ति समस्त लोकों के मल को नष्ट करनेवाली है। सीतापति भगवान राम सदा-सर्वदा, सर्वत्र विजयी-ही-विजयी हैं। राजन् ! अजन्मा होने पर भी पृथ्वी का भार उतारने के लिए वे ही भगवान यदुवंश में जन्म लेंगे और ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे, जिन्हें बड़े-बड़े देवता भी नहीं कर सकते। फिर आगे चलकर भगवान ही बुद्ध के रूप में प्रकट होंगे और यज्ञ के अनधिकारियों को यज्ञ करते देखकर अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों से मोहित कर लेंगे और कलियुग के अंत में कल्कि अवतार लेकर वे ही शूद्र राजाओं का वध करेंगे। महाबाहु विदेहराज ! भगवान की कीर्ति अनन्त है। महात्माओं ने जगत्पति भगवान के ऐसे-ऐसे अनेकों जन्म और कर्मों का प्रचुरता से गान भी किया है।

भक्तिहीन पुरुषों की गति और भगवान की पूजाविधि का वर्णन

राजा निमि ने पूछा : ''योगीश्वरो ! आपलोग तो श्रेष्ठ आत्मज्ञानी और भगवान के परम भक्त हैं। कृपा करके यह बतलाइये कि जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, लौकिक-पारलौकिक भोगों की लालसा मिटी नहीं है और मन एवं इन्द्रियाँ भी वश में नहीं हैं तथा जो प्रायः भगवान का भजन भी नहीं करते, ऐसे लोगों की क्या गति होती है ?''

अब आठवें योगीश्वर चमसजी ने कहा : ''राजन् ! विराट पुरुष के मुख से सत्त्वप्रधान ब्राह्मण, भुजाओं से सत्त्व-रज प्रधान क्षत्रिय, जाँघों से रज-तम प्रधान वैश्य और चरणों से तमःप्रधान शूद्र की उत्पत्ति हुई है। उन्हींकी जाँघों से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थल से वानप्रस्थ और मस्तक से संन्यास - ये चार आश्रम प्रकट हुए हैं। इन चारों वर्णों और आश्रमों के जन्मदाता स्वयं भगवान ही हैं। वही इनके स्वामी, नियन्ता और आत्मा भी हैं। इसलिए इन वर्ण और आश्रम में रहनेवाला जो मनुष्य भगवान का भजन नहीं करता, उलटा उनका अनादर करता है, वह अपने स्थान, वर्ण, आश्रम और मनुष्य-योनि से भी च्युत हो जाता है, उसका अधःपतन हो जाता है। बहुत-सी स्त्रियाँ और शूद्र आदि भगवान की कथा और उनके नामकीर्तन आदि से कुछ दूर पड़ गये हैं। वे आप जैसे भगवद्भक्तों की दया के पात्र हैं।

आप लोग उन्हें कथा-कीर्तन की सुविधा देकर उनका उद्धार करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जन्म से, वेदाध्ययन से तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारों से भगवान के चरणों के निकट तक पहुँच चुके हैं। फिर भी वे वेदों का असली तात्पर्य न समझकर अर्थवाद में लगकर मोहित हो जाते हैं। उन्हें कर्म का रहस्य मालूम नहीं है। मूर्ख होने पर भी वे अपनेको पण्डित मानते हैं और अभिमान में अकड़े रहते हैं। वे मीठी-मीठी बातों में भूल जाते हैं और केवल वस्तु-शून्य शब्द-माधुरी के मोह में पड़कर चटकीली-भड़कीली बातें कहा करते हैं। रजोगुण की अधिकता के कारण उनके संकल्प बड़े घोर होते हैं। कामनाओं की तो सीमा ही नहीं रहती। (क्रमशः)

ज्ञाननिष्ठ श्री गणेशानन्द 'अवधूत'

(गतांक से आगे)

–स्वामी श्री अखंडानंद सरस्वती

उनकी निष्ठा अद्वैत-वेदांत में अत्यन्त दृढ़ थी। वे धर्म, भक्ति या योग की बात पसन्द नहीं करते थे। मैं स्वयं कल्याण-परिवार में था। भक्ति और भक्तों की चर्चा में, उनके लेखन, स्वाध्याय में मेरा अधिक समय व्यतीत होता था। वहाँ भाईजी जैसे भक्त थे। गोस्वामी श्री चिम्मनलाल जैसे श्रद्धालु विद्वान थे और उन लोगों के प्रति मेरे मन में बहुत आदर का भाव भी था परंतु गणेशानन्द इन सब बातों की हँसी उड़ाया करते थे। वे कहते थे कि ''यह सब निरी भावुकता है। बात-बात में भगवान आकर दर्शन दे जाते हैं, कैसे भगवान हैं? भगवान् दृश्य होंगे तो उनका प्रकाश मैं ही तो हूँगा। दृश्य तो ऐसी वस्तु है जो चेतन के प्रकाश में और चेतन अधिष्ठान में ही भासती है। चेतन अपना आत्मा ही है। आप लोग दृश्य भगवान की चर्चा क्यों करते हैं? स्वयंप्रकाश, अधिष्ठान की चर्चा किया कीजिये।''

जब मैं संन्यासी होकर कर्णवास में रहने लगा, तब गणेशानन्दजी वहाँ आ गये। वे अपनी हँडिया में भिक्षा माँगकर लाते, खाते। कभी-कभी भिक्षा देनेवाले के दरवाजे पर ही खड़े-खड़े खा लेते। यह बात जरूर थी कि जब मैं भोजन करने बैठता, तब मेरी थाली के पास आकर बैठ जाते और जब मैं खाता तो वहीं माँगने लगते थे और मैं न दूँ तो ऊँ-ऊँ करके हाथ-पाँव पीटने लगते। लोग समझते थे कि वे स्वादु भोजन के लिए ऐसा करते हैं किंतु वह उनकी बालवत् चेष्टा होती थी। उनको तो भिक्षा की सूखी रोटी खाने में बहुत मजा आया करता था।

जब मैं वृन्दावन में रहने लगा तो वे आकर मेरे पास रहने लगे। भोजन का क्रम वही था। एक बार वे मुझसे कहने लगे कि तीर्थ में जाना-आना तो तमोगुणी है। 'देवी भागवत' का एक श्लोक बोलते थे :

इदं तीर्थं इदं तीर्थं भ्राम्यन्ति तामसा जनाः।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्ष शृणु प्रिये ॥

शंकरजी कहते हैं कि 'हे पार्वती! तमोगुणी लोग यहाँ तीर्थ है, वहाँ तीर्थ है, यह तीर्थ है, इस प्रकार की भ्रान्ति से भटकते रहते हैं। तीर्थ तो केवल अपना आत्मा है, उसको वे पहचानते नहीं। जब वे दृश्य में ही आसक्त हैं, तब उन्हें दृश्य से मुक्ति कैसे मिलेगी!'

मैंने उनसे कहा कि ''वृन्दावन में ऐसा कहोगे तो लोग तुमको मारेंगे।'' वे बोले : ''मारेंगे तो मार डालेंगे किंतु हम तो सच बोल रहे हैं।'' मैं नाराज हुआ तो वे बोले : ''अच्छा! आपको यह अच्छा नहीं लगा। जो आज्ञा कीजिये, सो कहूँ।'' मैंने कहा कि ''तुम बद्रीनाथ हो आओ।'' हँडिया उठायी और चल पड़े। पैदल बद्रीनाथ गये और पूरी यात्रा करके लौट आये। मैंने उनसे पूछा : ''वहाँ अलकनन्दा में स्नान किया?''

वे बोले : ''नहीं।'' मैंने पूछा : ''गरम कुण्ड का स्नान किया कि नहीं? बद्रीनाथ का दर्शन किया?'' वे बोले : ''नहीं। आपने तो केवल बद्रीनाथ जाने को कहा था। मैं गया और लौट आया। बद्रीनाथ तो मैं ही हूँ।''

एक बार हम लोग हरिद्वार से वृन्दावन पैदल आये। साथ में कई स्वस्थ, सुन्दर, तगड़े साधु थे। सिला हुआ कपड़ा कोई नहीं पहनता था। गाँव में भिक्षा माँगकर खा लेते थे। आनन्द में भरे हुए 'अवधूत' गणेशानन्द हँसते-हँसाते, खेलते-खिलाते साथ-साथ चलते थे। नहर का किनारा, वृक्षावली सम्पन्न गाँव देख-देखकर मन प्रसन्न होता था। एक गृहस्थ सामने से आ रहा था। उसने पूछा : ''बाबाजी! आप लोग किस खेत का गेहूँ खाते हैं?'' 'अवधूत' गणेशानन्द बोले : ''हम लोग बेफिक्री का गेहूँ खाते हैं।'' उसने पूछा : ''आज कहाँ धावा है?'' 'अवधूत' ने कहा : ''आज तुम्हारे घर पर ही धावा है।'' सचमुच वह गृहस्थ बड़े प्रेम से हम लोगों को अपने निवास-स्थान पर ले गया। पूछ-पूछकर उसने

(शेष पृष्ठ २२ पर)

सुखमय जीवन के सोपान

रसस्वरूप परमात्मा में डूबकर नीरसता मिटाओ

-पूज्य बापूजी

मनुष्य अपराध कब करता है, बुरी कामनाओं में कब फँसता है, बुरे कर्म कब करता है ?

कोई सच्चा-ईमानदार मनोवैज्ञानिक होगा तो वह बोलेगा : 'जब मनुष्य का जीवन नीरस होता है, तब वह काल्पनिक रस पाने के लिए, नीरसता मिटाने के लिए अपराध करता है, कामविकार में गिरता है, शराब पीता है, चुगली करता है या गपशप में समय बरबाद करता है।'

दुनिया के कोई भी पाप कर्म, चाहे उन्हें वासनाप्रेरित कर्म कहो, चाहे इन्द्रिय-लोलुपताजन्य कर्म कहो, सारे-के-सारे नीरसता से उत्पन्न होते हैं।

अनगिनत पुस्तकें चाट गये, धन की तिजोरियाँ भर लीं, अखबारों में फोटो छप गये, मकान बन गये तो भी मानव की फरियाद और नीरसता नहीं जाती। अपने घर में रस नहीं आता तो पड़ोस के घर में चले जाते हैं चक्कर मारने कि देखें, आज उसने रसोई में क्या बनाया है ? नीरसता मिटाने के लिए जीवात्मा कभी किसीके घर, कभी किसीकी दुकान पर व्यर्थ का इधर-उधर भटकता है। सारी भटकान रस पाने के लिए है। सारी दौड़धूप नीरसता मिटाने के लिए है।

कामना कब उत्पन्न होती है ? पति-पत्नी कामविकार कब भोगते हैं ? जब अंदर नीरसता होती है, तब इन्द्रिय के आकर्षण से, इन्द्रिय के द्वारा रस पाना चाहते हैं। थोड़ी देर कामविकार का रस मिलता है, बाद में उनकी क्या हालत होती है ? घोर नीरसता आती है। धन, सत्ता, भौतिक सुख-सुविधा पाने के बाद भी लोग नीरसता मिटाने के लिए क्लबों में जाते हैं, शराब पीते हैं, सुंदरियों के साथ नाचते हैं और नाचने के बाद नीरसता मिटाने के लिए उनके साथ कामविकार भी भोग लेते हैं। फिर भी नीरसता नहीं मिटती। उलटे पराधीनता बढ़ती है, जड़ता बढ़ती है और भ्रम हो जाता है कि मैं अपनी गर्लफ्रेंड के बिना नहीं जी सकता, मैं अपने बॉयफ्रेंड के बिना नहीं जी सकती। इसलिए कई लड़के-लड़कियाँ आत्महत्या कर लेते हैं।

क्या विकारों से नीरसता मिटेगी ? नहीं, इससे जिम्मेदारियाँ ही बढ़ेंगी और संसार में पचते रहेंगे। जो नीरसता मिटाने के लिए नीच साधनों का उपयोग करते हैं, वे नीच गति को पाते हैं। उनका बल, बुद्धि, तेज, तंदुरुस्ती, प्रभाव सब नष्ट हो जाता है क्योंकि जीव बुद्धि के साथ, बुद्धि मन के साथ और मन इन्द्रियों के साथ रहता है। इन्द्रियाँ पशुधर्मा हैं, वे मन को खींच लेती हैं। यदि बुद्धि कमजोर है तो वह मन की हाँ-में-हाँ मिला देती है।

हम रस क्यों चाहते हैं ?

रसो वै सः वैश्वानरो। परमात्मा रसस्वरूप हैं और जीवात्मा उनका सनातन अंश है। इसलिए जीवात्मा से नीरसता सही नहीं जाती। जब परमात्मा रसस्वरूप हैं तो जीवात्मा नीरसता में कैसे रहेगा ? नीरसता को मिटाने के लिए वह इन्द्रियों के द्वारा रस खोजकर दुराचारी हो जाता है।

इससे बचने का सुंदर उपाय है कि हम निर्विकार रस से नीरसता मिटायें। रस भी मिले, नीरसता भी मिटे और हम विकारों में भी न गिरें- ऐसा यह उपाय है। विकारों के बिना का रस चार प्रकार का है : औदार्य रस, शांत रस, प्रेमाभक्ति रस और तात्त्विक रस। ये रस तारनेवाले हैं। बाकी के नीरसता मिटाने के साधन तबाह करनेवाले हैं।

औदार्य रस :

आपके पास जो भी योग्यता है उसे दूसरों की सेवा

में लगा दो और बदले में कुछ भी चाहो नहीं। बोले : 'धन होगा तो हम दान-पुण्य करेंगे।'

अरे, अभी धन नहीं है तो बल तो है। बल से सेवा करो।

बोले : 'बल भी नहीं है। तंदुरुस्त होंगे तब सेवा करेंगे।' अभी मन तो है। मन से ही भगवत्प्रीति करो, भगवज्जनों के लिए सद्भाव रखो। मन से जितनी सेवा हो सके उतनी करो। इससे आपको औदार्य रस मिलेगा।

वनवास के समय द्रौपदी पांडवों के साथ वन में विचरण कर रही थी। कहाँ तो महारानी और कहाँ वन में भटक रही है ! फिर भी द्रौपदी के जीवन में प्रसन्नता व चमक थी। पांडव उसके अनुकूल रहते थे, उस पर कभी कुपित नहीं होते थे। एक बार भगवान श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा ने द्रौपदी से इसका रहस्य पूछा।

द्रौपदी ने कहा : ''मैं आलस्यरहित होकर दूसरों की सेवा करने में, दूसरों के दुःख दूर करने में लग जाती हूँ और बदले में कुछ भी नहीं चाहती हूँ। इससे मुझे औदार्य रस मिलता है, साथ ही मेरे पति भी मेरे अनुकूल रहते हैं।''

विकारों का रस मनुष्य को पराधीन करता है। औदार्य रस मनुष्य को स्वाधीन करता है।

शांत रस :

जितनी भी इच्छाएँ और वासनाएँ हैं, वे सब कभी भी किसीकी भी पूरी नहीं हुईं। जो उचित हैं, जिन्हें हम पूरा कर सकते हैं तथा जिनके बिना काम नहीं चलता, उन्हें पूरा कर डालो। जिनके बिना काम चल सकता है, उन्हें हटा दो तो आप स्वयं को ध्यान की शांति में, कर्तव्य की तृप्ति में और औदार्य रस में सराबोर पायेंगे। औदार्य रस से फिर आपको शांत रस मिलेगा।

प्रेम रस :

भगवान और गुरु के प्रति आत्मीयता करने से प्रेम रस पैदा होता है। प्रेम रस नित्य नवीन होता है। **दिने दिने वर्धयति।** दिन-प्रतिदिन बढ़ता है।

प्रेम रस में नीरसता नहीं आती। उसमें वक्रता होती है तो भी मजा आता है। मैंने सब फेंक दिया और सोचा : **'जिसको गरज होगी आयेगा, सृष्टिकर्ता खुद लायेगा।'** यह प्रेम रस में वक्रता है। गोपियों ने श्रीकृष्ण को कहा : 'तुम नाचो ! फिर हम तुम्हें छाछ देंगी।' यह प्रेम रस में वक्रता है।

प्रेम रस में दूरी नहीं होती, देरी नहीं होती, थकान नहीं होती, उबान नहीं होती। श्रीकृष्ण को स्वधाम पधारे वर्षों बीत गये लेकिन कृष्ण-प्रेम दीवानी मीरा भावना से श्रीकृष्ण को अपने नजदीक पाती है, मूर्ति में पाती है, मन में पाती है, मति में पाती है, गति में पाती है, उसकी मधुरता का आस्वादन करती है।

भक्त भगवान के प्रेम रस की मधुरता के मकरंद होते हैं। अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इतना प्रेम था कि नींद में भी उसके श्वासों से 'कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि निकलती थी। हनुमानजी का रामजी के प्रति इतना प्रेम था, इतना स्नेह था कि कितना भी कार्य आ पड़े कभी थकान नहीं लगती थी। **राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥** क्योंकि प्रेमास्पद का कार्य है।

गुरु कहीं हैं और शिष्य कहीं है पर प्रेम रस में गुरु-शिष्य का वार्तालाप हो जाता है, सपने में गुरुजी के दर्शन हो जाते हैं अथवा जरा नजर मिलने की भावना होती है और नजर मिल जाती है तो प्रेम रस उछलता है।

गुरु की आज्ञा के प्रति, गुरु के प्रति और भगवान के प्रति प्रेम था तो हम बच गये। अगर गुरु के प्रति, गुरु-आज्ञा पालने के प्रति प्रेम नहीं होता तो हम डीसा (गुज.) (जहाँ का वातावरण साधना-ध्यान के लिए एकदम प्रतिकूल एवं कसौटीपूर्ण था) छोड़कर नर्मदा किनारे जाते। नर्मदा किनारे तो कई लोग अभी भी भटक रहे हैं। तो हम आज बापूजी नहीं होते, हम भी दूसरे लोगों की नाईं भटक रहे होते। गुरु की आज्ञा के प्रति जो प्रेम होता है वह बड़ी रक्षा करता है।

तात्त्विक रस (आत्मतत्त्व का या भगवद् रस) :

साक्षात्कार से तो सदा के लिए नीरसता मिटती है। हमने नीरसता मिटायी, हमारे गुरुदेव ने नीरसता मिटायी। आप सब भी नीरसता मिटाने के लिए दिन-रात दौड़धूप कर रहे हैं परंतु आप नीरस संसार से नीरसता मिटाने का यत्न करते हैं और महापुरुष वास्तविक रसस्वरूप ईश्वर, जो सबके आत्मा हैं, उनमें विश्रांति पाकर नीरसता मिटाते हैं।

पहले के जमाने में गुरुकुलों में बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ वास्तविक रस की, आध्यात्मिक विकास की भी दिशा दी जाती थी। आज केवल भौतिक विकास, भौतिक उन्नति के लिए इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि को सांसारिक चीजों में लगाकर नीरसता मिटाने के लिए व्यर्थ की मेहनत चालू है। नीरसता मिटाने के लिए व सरसता लाने के लिए लोग कई-कई उपाय कर-करके आखिर थक के, निराश हो के, दुःखी हो के, विफल हो के मर जाते हैं। आप जब तक वासना का क्षय करके निर्वासनिक नारायण की तरफ नहीं आयेंगे, तब तक आपकी नीरसता नहीं मिटेगी।

चाहे कितनी भी नीरसता हो, कामविकार कितना भी सता रहा हो, पानी के घूँट पीयो, कूदो-फाँदो, हास्य करो। कामविकार के कमरतोड़ कार्यक्रम से रक्षा हो जायेगी। किसीकी चुगली करके रस पाना चाहते हो तो ठाकुरजी के आगे चुगली करो। देर-सवेर चुगली करने की आदत छूटकर भगवान में मन लगेगा, भगवद्रस आने लगेगा।

कभी पति-पत्नी में झगड़ा हो जाय तो भगवान से कह देना : 'हे रसस्वरूप ! आप रसस्वरूप हो लेकिन मैं सांसारिक विषयों से नीरसता मिटाने के लिए भटक रहा था। महाराज ! यह झगड़ा कराकर आपने बड़ी कृपा की। हे माधुर्यस्वरूपा, आनंदस्वरूपा ! आपसे रस लेने की अक्ल नहीं है और संसार में रस लग रहा है। हे हरि ! गोविंद ! गोपाल ! माधव ! मुझ पर दया करो। मेरी बुद्धि कुछ बदलो महाराज ! बुद्धि बदले-न-बदले मैं तो बदल जाऊँ, ऐसी कृपा करो। मैं बदल जाऊँगा तो बुद्धि भी अपने-आप बदलेगी। मैं अपने-आपको नहीं बदल सकता हूँ। हे प्रेमस्वरूपा ! आप ही मुझे बदलने की कृपा करो।'

जितना हेत हराम से, उतना हरि से होय।
कह कबीर ता दास का, पला न पकड़े कोय॥

आप अपनी मान्यता को बदल दो। आप बाहर के विषय-विकारों से, धन से या कपट से सुखी होने की बेवकूफी कर रहे हो। उनको महत्त्व न दो। विषय-विकार, सुविधा की अधीनता में बँधकर दीन मत बनो अपितु अपना समय सत्कर्म, भगवद्भक्ति, सेवाकार्य में लगाओ। ऐसा दृढ़ संकल्प करो कि 'हम रसस्वरूप परमात्मा का आश्रय लेकर सच्चे सुख को पायेंगे, सच्चे ज्ञान को पायेंगे, सच्चे आनंद को पायेंगे, बस ! ॐ... ॐ... ॐ...' तो वह दिन दूर नहीं जब आपकी नीरसता सदा के लिए मिट जायेगी और परम रसस्वरूप परमात्मा में आपकी स्थिति हो जायेगी। ■

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

तुम्हारे वेदांत-भाव का तुम्हारे प्रजाजनों पर भी भलीभाँति प्रभाव पड़ा है और लोग सर्वव्यापी जगदीश्वर को सर्वव्यापी मानते तथा समता के भाव से प्रेरित परस्पर सद्भाव करते दिखलायी पड़ते हैं किंतु सारा संसार समदर्शी नहीं हो सकता । सारे प्राणी सर्वव्यापी ईश्वर की आराधना नहीं कर सकते । इसी कारण सृष्टि की रचना के साथ-ही-साथ जीवों के कल्याणार्थ तीर्थस्थानों एवं दिव्य देशों की रचना भी भगवान की इच्छा ही से होती है । **तीर्थयात्रा द्वारा साधारण-से-साधारण प्राणी भी अपने जीवन को सफल बना सकते हैं और योगीदुर्लभ फल को प्राप्त कर सकते हैं ।** यह भी देखा जाता है, जो आचरण बड़े लोग करते हैं वही आचरण उन्हींके प्रमाण से उनसे छोटे लोग भी करते हैं। अतएव बड़े लोगों के आचरणानुसार संसार बन जाता है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की नीति से इस समय तुम्हारे साम्राज्य में वेदांत का अनुशीलन बढ़ गया है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-से लोग सच्चे वेदांती हैं किंतु उन्हींकी तरह न जाने कितने ढोंगी भी हैं जो कहा करते हैं कि 'अपने शरीर में ही सारे तीर्थ हैं। तीर्थाटन करना ही व्यर्थ है ।' इस प्रकार तुम्हारे साम्राज्य में तीर्थयात्रा का महत्त्व धीरे-धीरे घटता जा रहा है परंतु ये लक्षण अच्छे नहीं हैं ।''

प्रह्लादजी : ''आचार्यचरण ! अवश्य ही ये लक्षण बुरे हैं। मेरा अभिप्राय यह कभी नहीं था कि लोग झूठे वेदांती बनें और ज्ञान का अर्थ तीर्थों की निन्दा, यज्ञों की निन्दा, कर्मकाण्ड की निन्दा और दान-पुण्य की निन्दा करना ही समझें किंतु किया क्या जाय, ऐसे ही भाव प्रायः लोगों में देखे जा रहे हैं, यह बड़े दुःख और चिन्ता की बात है। स्वामिन् ! इस अनर्थ को मिटाने का उपाय और इस अपराध के लिए मुझको प्रायश्चित्त बतलायें । मैं उस प्रायश्चित्त को करने के लिए अभी तैयार हूँ।''

शुक्राचार्य : ''वत्स प्रह्लाद ! इसका सर्वोत्तम प्रायश्चित्त यही है कि जो प्रजा तुम्हारी पदानुगामिनी बन रही है, उसको स्वयं आचरण करके सन्मार्ग दिखलाओ। तुम अपने दल-बल सहित स्वयं तीर्थयात्रा को चलो और तीर्थाटन करके अपनी प्रजा के लिए आदर्श बनो । ऐसा करने से तुम्हारी प्रजा तुम्हारा पदानुसरण करेगी, जिससे सारा अनर्थ मिट जायेगा और तुम्हारा प्रायश्चित्त भी हो जायेगा ।''

प्रह्लादजी ने शुक्राचार्यजी की आज्ञा शिरोधार्य की और अपने लड़कों को मन्त्रियों के अवधान में राजभार सौंप तीर्थाटन के लिए तैयारी की । दैत्यर्षि ने आचार्यजी से कहा : ''भगवन् ! यद्यपि लड़के राजनीति में निपुण हैं और अन्यान्य शासन-संबंधी योग्यता भी इनमें देखी जाती है तथापि अभी तक इन्होंने कभी राजभार अपने ऊपर नहीं लिया था । अतएव सम्भव है कि इनमें कोई त्रुटि हो । आप इनको राजनीति की शिक्षा देकर आशीर्वाद देने की कृपा करें, जिससे मेरी अनुपस्थिति में ये यथोचित राजकाज करने में समर्थ हों और मेरी प्रजा को कष्ट न हो।''

प्रह्लादजी की प्रार्थनानुसार महर्षि शुक्राचार्यजी ने विरोचन आदि पुत्रों को राजनीति के गूढ़ रहस्यों का उपदेश दिया । तदनन्तर सम्राट प्रह्लाद ने दल-बल सहित तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया ।

तीर्थयात्रा के समस्त नियमों का पालन करते हुए प्रह्लाद ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समस्त तीर्थों की यात्रा समाप्त की । तदनन्तर कुछ समय तक त्रिकूट पर्वत पर विश्राम किया। फिर पाताल के तीर्थों की यात्रा की और वहाँ से लौटकर महर्षि च्यवन के साथ नैमिषारण्य में आये । वहाँ श्री नर-नारायण की प्रसन्नता प्राप्त कर अपनी राजधानी हिरण्यपुर को लौटे। ■ (क्रमशः)

(महाशिवरात्रि : १६ फरवरी २००७)

सर्वधर्ममयी शिवरात्रि

पूर्वकाल में आनर्त देश में अश्वसेन नाम से विख्यात एक राजा हो गये हैं, जो सदा धर्म में तत्पर रहते थे । उन्होंने वेद-वेदांगों के पारंगत विद्वान भर्तृयज्ञ मुनि से पूछा : ''मुने ! कलिकाल में पालन करने योग्य कोई ऐसा व्रत है, जो थोड़े ही परिश्रम से साध्य होने पर भी महान पुण्यप्रद तथा सब पापों का नाश करनेवाला हो ? यदि हो तो बताइये।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥

मनुष्य को चाहिए कि वह कल का काम आज ही कर ले, जो कार्य अपराह्न में किया जानेवाला हो, उसे पूर्वाह्न में ही कर ले क्योंकि मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि इस मनुष्य का कार्य पूरा हो गया है या नहीं ।'' **(स्कंद पुराण, नागर खं. उत्तरार्ध : २२१.१८)**

यह सुनकर उदार बुद्धिवाले भर्तृयज्ञ ने ध्यान करके दिव्य दृष्टि से सब बात जानकर कहा :

''राजन् ! शिवरात्रि नाम से विख्यात एक पुण्यदायक व्रत है। जो-जो कामना मन में लेकर मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है । जो निष्कामभाव से इसका पालन करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है तथा वर्ष भर के किये हुए पापों से छुटकारा पा जाता है।

इस लोक में जो-जो चल अथवा अचल शिवलिंग हैं, उन सबमें उस रात्रि को भगवान शिव तत्त्व का संक्रमण होता है । इसलिए उसे शिवरात्रि कहा गया है । भगवान शंकर को वह बहुत प्रिय है।

सम्पूर्ण देवताओं ने एक समय सब लोकों पर अनुग्रह करने की इच्छा से भगवान शंकर से प्रार्थना की : 'भगवान ! समस्त पापों से भरे हुए इस कलिकाल में कोई एक दिन ऐसा बताइये, जो वर्ष भर के पापों की शुद्धि कर सके । जिस दिन आपकी पूजा करके मनुष्य सब पापों से शुद्ध हो सकें । जिससे उनका किया हुआ होम, दान आदि हम लोगों को प्राप्त हो सके क्योंकि कलिकाल में अशुद्ध मनुष्यों के द्वारा दी हुई कोई भी वस्तु हमें नहीं मिल पाती है।'

भगवान शिव ने कहा : ''देवेश्वरो ! माघ (फाल्गुन)[1] मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को रात के समय मनुष्यों के वर्ष भर के पाप को शुद्ध करने के लिए भूतल के समस्त चल-अचल शिवलिंगों में मैं संक्रमण करूँगा । जो मनुष्य उस रात में निम्नांकित मंत्रों द्वारा मेरी पूजा करेगा, वह पापरहित हो जायेगा।

ॐ सद्योजाताय नमः ।
ॐ वामदेवाय नमः ।
ॐ अघोराय नमः ।
ॐ ईशानाय नमः ।
ॐ तत्पुरुषाय नमः ।

इस प्रकार गंध, पुष्प, चंदन, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा इन पाँच मंत्रों से मेरे पाँच मुखों का पूजन करके निम्नलिखित मंत्र को पढ़ते हुए मन-ही-मन मेरा ध्यान करे और अर्घ्य प्रदान करे।

अर्घ्य मंत्र :

गौरीवल्लभ देवेश सर्पाढ्य शशिशेखर।
वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घ्यो मे गृह्यतां ततः ॥

'पार्वती देवी के प्रियतम, सम्पूर्ण देवताओं के

---

१. यहाँ अमावस्यांत मास की दृष्टि से माघ कहा गया है । जहाँ कृष्ण पक्ष में मास का आरम्भ और पूर्णिमा पर उसकी समाप्ति होती है, उसके अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में यह शिवरात्रि का व्रत होता है।

स्वामी तथा सर्पों की माला से विभूषित भगवान चन्द्रशेखर ! आप वर्ष भर के पापों की शुद्धि के लिए मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

अर्घ्यदान के बाद भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा सदाचारी, भजनानंदी, साधु-ब्राह्मण का पूजन करे। उसे दक्षिणा दे। मंदिर में बैठकर धार्मिक उपाख्यान, कथा और शिव-महिमा सुने। देवेश्वरो ! जो इस प्रकार शिवरात्रि व्रत करेगा, उसके सब पापों की शुद्धि के लिए यह सर्वोत्तम प्रायश्चित्त का कार्य करेगा।''

नरश्रेष्ठ ! यह सुनकर सब देवता भगवान चन्द्रशेखर को प्रणाम करके अपने-अपने उत्तम स्थानों को चले गये । उन्होंने शिवरात्रि व्रत का पालन करने के लिए लोगों को समझाने तथा उपदेश देने के निमित्त मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी को भेजा। नारदजी ने भूतल पर पधारकर सब ओर सब लोगों को शिवरात्रि की महिमा सुनायी ।

जो अपने लिए ऐश्वर्य एवं कल्याण की इच्छा करे, उसे प्रयत्नपूर्वक शिवरात्रि व्रत करना चाहिए । शिवि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, सगर, युयुत्सु तथा अन्य महापुरुषों ने भी श्रद्धापूर्वक शिवरात्रि व्रत का पालन किया है और अपने मनोवांछित पदार्थों को पाया है। स्त्रियों में सावित्री, लक्ष्मीदेवी, सीताजी, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती, मेना, इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य देवियों ने भी शिवरात्रि व्रत किया है और अत्यंत सौभाग्य के साथ सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथों को पाया है । जो भगवान शिव के समीप इस शिवरात्रि व्रत की महिमा को भक्तिपूर्वक सुनता है वह दिन भर के समस्त पाप से मुक्त हो जाता है।

नास्ति गंगासमं तीर्थं
नास्ति देवो हरोपमः ।
शिवरात्रेः परं नास्ति
तपः सत्यं मयोदितम् ॥

'गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है। महादेवजी के समान दूसरा देवता नहीं है तथा शिवरात्रि से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। यह मैंने सत्य कहा है।'

(स्कंद पुराण : नागर खंड, उत्तरार्ध)

मेरु सब रत्नों से भरा है। आकाश सब आश्चर्यों से परिपूर्ण है । इसी प्रकार शिवरात्रि सर्वधर्ममयी बतायी गयी है। जैसे पक्षियों में गरुड़ और जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, वैसे ही सब धर्मों में शिवरात्रि उत्तम है।'' ■

आत्मशिव का पूजन

अच्छा माना गया है शिवपूजन बाह्य उपचारों से ।
साथ ही अंतर पूजा करें शिवत्व के विचारों से ॥
गहरा गोता लगायें हम शुभ चिंतन से शिवत्व में ।
बुद्धि में प्रकाश प्रकट हो शांति पायें गुरुतत्त्व में ॥
चित्त की चंचलता मिटायें शिवत्व के चिंतन से ।
विश्रांति पायें आत्मशिव के पूजन से ॥
शिव पूजन करें जब बिल्व के तीन पत्रों से ।
प्रार्थना करें हे प्रभु ! हम पार हो तीन गुणों से ॥
पंचामृत द्वारा शिवपूजन करें उल्लास से ।
पर पार हों हम इस पंचभौतिक विलास से ॥
उत्तम है शिवपूजन धूप-दीप और दान से ।
अंतर में प्रकाश हो हमारे 'शिवोऽहम्' के ज्ञान से ॥
पत्र-पुष्पों से शिवजी की बाह्य आराधना से ।
आत्मशिव को प्रसन्न करें शुद्ध भावना से ॥
शिवरात्रि का जागरण करें पूर्ण सजगता से ।
पर खोजें कि कैसे एक हों हम आत्मसत्ता से ॥
एक वृत्ति और दूसरी वृत्ति के बीच क्षण में ।
टिक जायें हम निज आत्मस्वरूप 'सोऽहम्' में ॥
शिवरात्रि के शिवपूजन का यही पूर्ण महाफल ।
आत्मशिव की आराधना से करें जीवन सफल ॥

– पूज्य बापूजी का कृपापात्र

होलिकोत्सव पर पूज्य बापूजी का संदेश

होली मात्र कंडे-लकड़ी के ढेर को जलाने का त्यौहार नहीं है, यह तो इसके साथ-साथ चित्त की दुर्बलता दूर करने का, मन की मलिन वासनाओं को जलाने का पवित्र दिन है।

इस दिन से विलासी वासनाओं का त्याग करके परमात्म-प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, इष्टनिष्ठा, निर्भयता, स्वधर्मपालन आदि दैवी गुणों का अपने जीवन में विकास करना चाहिए। भक्त प्रह्लाद जैसी दृढ़ ईश्वरनिष्ठा, सहनशीलता, क्षमाशीलता, प्रभु-प्रेम, करुणा, दया, अहिंसा आदि दैवी गुणों का आवाहन अपने जीवन में करना चाहिए।

होली का रंग तो अपने तन को रँगता है पर आप हरि के रंग से अपने हृदय को रँगना। होली का त्यौहार प्रकृति का त्यौहार है, वसंत का उत्सव है, नये अन्न को भगवद्-अर्पण कर फिर उपयोग में लेने की परंपरा का पावन उत्सव है। इस दिन से खजूर का त्याग करना चाहिए।

होली अपने दुर्गुणों, व्यसनों तथा बुराइयों को जलाने और अच्छाइयाँ ग्रहण करने का पर्व है। होली एक संजीवनी है जो साधक की साधना को पुनर्जीवित करती है। यह समाज में प्रेम का संदेश फैलाती है। अपनी उच्छृंखलता से, उद्दंडता से कहीं किसीका अपमान या निंदा

(होलिकोत्सव : ३ मार्च २००७)

इतना रँगना कि रंग नाहीं छूटे...

न हो जाय, कहीं किसीकी कोई हानि न हो जाय इसकी कदम-कदम पर सावधानी रखना।

ऐसी परिस्थितियों से बचना जो आपको दुर्व्यसनों के जहरीले रंगों से रँगना चाहें। आप तो बस, अपने-आपको हरिभक्ति के रंग से... प्रभु और प्रभु के प्यारे संतों के आत्मानंद से रँग देना... इतना रँगना इतना रँगना कि रंग नाहीं छूटे...

जहरीले, रासायनिक रंगों से होली खेलना हानिकारक है। केसूड़े के पुष्पों से बने रंग से होली खेलना हितकारी है। इससे शरीर के सप्तरंगों व सप्तधातुओं का संतुलन बना रहता है, त्वचा की सुरक्षा होती है तथा गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ती है।

अद्वैत होली

होली जली तो क्या जली, पापिन अविद्या नहीं जली।
आशा जली नहीं राक्षसी, तृष्णा पिशाची नहीं जली।
झुलसा न मुख आसक्ति का, नहीं भस्म ईर्ष्या की हुई।
ममता न झोंकी अग्नि में, नहीं वासना फूँकी गयी ॥
नहीं धूल डाली दम्भ पर, नहीं दर्प में जूते दिये।
दुर्गति न की अभिमान की, नहीं क्रोध में घूँसे दिये।
अज्ञान को खर पर चढ़ा, कर मुख नहीं काला किया।
ताली न पीटी काम की, तो खेल होली क्या लिया ॥
छाती मिलाते शत्रु से, सन्मित्र से मुख मोड़ते।
हितकारी ईश्वर छोड़कर, नाता जगत से जोड़ते।
होली भली है देश की, अच्छी नहीं परदेश की।
सुनते हुए बहरे हुए, नहीं याद करते देश की ॥
माजून खायी भंग की, बौछार कीन्हीं रंग की।
बाजार में जूता उछाला, या किसी से जंग की।
गाना सुना या नाच देखा, ध्वनि सुनी मौचंग की।
सुध बुध भुलायी आपनी, बलिहारी ऐसे रंग की ॥
होली अगर हो खेलनी, तो संत सम्मत खेलिये।
सन्तान शुभ ऋषि मुनिन की, मत संत आज्ञा पेलिये।
सच को ग्रहण कर लीजिये, जो झूठ हो तज दीजिये।
सच झूठ के निर्णय बिना, नहीं काम कोई कीजिये ॥

(जानकीजी जयंती : १० फरवरी)

सीताजी का आदर्श जीवन

सीताजी का जीवन सभी स्त्रियों के लिए प्रत्येक परिस्थिति में पथप्रदर्शक है । सीताजी में असाधारण पातिव्रत्य, त्याग, शील, निर्भयता, शांति, क्षमा, सौहार्द, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, संयम, सेवा, सदाचार, व्यवहारपटुता, साहस, शौर्य आदि सद्‌गुण विद्यमान थे। उनके जीवन की हर घटना माताओं, बहनों एवं बहू-बेटियों को उत्तम शिक्षा प्रदान करती है।

श्रीरामजी ने जब सीताजी से अपने वनवास-प्रस्थान की बात कही, उस समय सीताजी ने तुरंत ही अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया और प्रेम व धर्म युक्त ये वचन कहे :

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्‌गन्ती कुशकण्टकान्॥
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥

(वाल्मीकि रामायण : अयो. का. २७.७,१२)

यदि आप आज ही दुर्गम वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्ते के कुश-कण्टकों को कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी। वहाँ मुझे त्रिलोकी के किसी भी विषय का चिंतन नहीं होगा, सदा पातिव्रत-धर्म का स्मरण करती हुई आपकी सेवा में लगी रहूँगी। आप मेरी याचना सफल करें, मुझे साथ ले चलें।

श्रीरामजी से वन के नाना क्लेश सुनकर भी सीताजी अपने निश्चय से विचलित नहीं हुईं।

अंत में सीताजी के प्रेम की विजय हुई। रामजी ने प्रेमपूर्वक उन्हें साथ ले चलना स्वीकार कर लिया।

पति-सेवा में ही सदा प्रसन्न रहनेवाली सीताजी वन में जाकर अपने समस्त भौतिक सुखों को भूल जाती हैं। वे निरंतर भगवान श्रीराम की ही सेवा में तत्पर रहतीं। उनके आज्ञानुसार अर्घ्य, पाद्य आदि से वनवासी ऋषियों का यथायोग्य सत्कार करती थीं। पंचवटी जाते समय जब श्रीरामचन्द्रजी अत्रि ऋषि के आश्रम पर ठहरे, उस समय सती अनसूयाजी ने सीताजी को पातिव्रत-धर्म का बड़ा ही सुंदर उपदेश दिया। सीताजी ने अनसूयाजी के उपदेश का समर्थन करते हुए कहा :

''यदि मेरे पतिदेव अनार्य (अश्रेष्ठ) और जीविकारहित होते, तब भी मैं बिना किसी दुविधा के इनकी सेवा में संलग्न रहती। फिर जब ये अपने गुणों के कारण ही सबकी प्रशंसा के पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्थायी प्रेम करनेवाले और माता-पिता की भाँति हितैषी हैं, तब इनकी सेवा के विषय में कहना ही क्या है!''

सीताजी के तेज व निर्भयता का नमूना भी देखिये। जिस अतुल पराक्रमी रावण का नाम सुनकर देवता लोग

भी घबड़ा जाते थे, उसीको सीताजी निर्भयता के साथ कैसा उत्तर देती हैं ! वे रावण के दाँव में पड़ी हुई भी अत्यंत क्रोध से उसका तिरस्कार करती हुई कहती हैं :

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंही मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥

'तू सियार है और मैं सिंहनी हूँ । मैं तेरे लिए सर्वथा दुर्लभ हूँ। फिर भी क्या तू मुझे पाने का हौसला रखता है ? जैसे कोई सूर्य की प्रभा को नहीं छू सकता, वैसे तू मुझे छू भी नहीं सकता।' **(वाल्मीकि रामायण : अर. का. ४७.३७)**

इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि ''तुझमें और श्रीरामचन्द्रजी में उतना ही अंतर है, जितना सिंह और सियार में, समुद्र और नाले में, अमृत और काँजी में, सोने और लोहे में, चंदन और कीचड़ में, हाथी और बिलाव में, गरुड़ और कौवे में।'' आदि।

इससे यह सीखना चाहिए कि अपने पातिव्रत-धर्म और परमात्मा के बल पर किसी भी अवस्था में स्त्री को डरना उचित नहीं है। अन्याय का प्रतिवाद निर्भयता से करना चाहिए। परमात्मा के बल पर सच्चा भरोसा होगा तो प्रभु अवश्य सहायता करेंगे।

अपने पातिव्रत-धर्म और परमात्मा के बल पर किसी भी अवस्था में स्त्री को डरना उचित नहीं है। अन्याय का प्रतिवाद निर्भयता से करना चाहिए। परमात्मा के बल पर सच्चा भरोसा होगा तो प्रभु अवश्य सहायता करेंगे।

किसी प्रकार के प्रलोभन, भय या बड़ी भारी विपत्ति के आने पर भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए - इस बात की शिक्षा भी सीताजी के जीवन से मिलती है। लंका की अशोक वाटिका में सीताजी का धर्म नष्ट करने के लिए रावण ने कम चेष्टा नहीं की। वह स्वयं अपनी स्त्रियों के साथ अशोक वाटिका में गया, सीताजी को अपना वैभव दिखाकर उनका मन विचलित करने के लिए बड़े-बड़े प्रलोभन दिये, बार-बार अनुनय-विनय किया। इस पर भी सीताजी अपने धर्म पर अटल रहकर रावण का नीतियुक्त शब्दों में सदा तिरस्कार ही करती रहीं। जब रावण ने बार-बार श्रीराम के प्रति कठोर शब्द कहे और सीताजी को अनेक प्रकार का भय दिखलाया, यहाँ तक कि माया से बना हुआ श्रीराम का सिर भी लाकर उनके सामने रख दिया, उस समय इन सब बातों से बहुत दुःखी होकर सीताजी मरने के लिए तैयार हो गयीं परंतु धर्म से डिगने की भावना स्वप्न में भी उनके मन में नहीं उठी। उनका मन दिन-रात श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में ही लगा रहता था। राक्षसियों ने भी सीताजी को भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत तंग किया परंतु सीताजी तो सीताजी ही ठहरीं । धर्म-त्याग की तो बात ही क्या, उन्होंने विपत्ति से बचने के लिए छल से भी कभी अपने बाहरी बर्ताव में भी कोई दोष नहीं आने दिया । उनके निर्मल और धर्म से परिपूर्ण मन में कभी कोई बुरी स्फुरणा भी नहीं आयी।

सीताजी की सावधानी भी अनुकरण करने योग्य है। जब हनुमानजी अशोक वाटिका में गये, तब सीताजी ने अपने बुद्धि-कौशल से सब प्रकार से उनकी परीक्षा की। जब तक उन्हें यह विश्वास न हुआ कि हनुमानजी सचमुच श्रीरामजी के दूत हैं और मुझे ढूँढ़ने के लिए ही यहाँ आये हैं, तब तक उन्होंने हनुमानजी से खुले दिल से बात नहीं की।

हनुमानजी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा :

''आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये, मैं आज ही आपको इस दुःख से मुक्त कर दूँगा। मैं शीघ्र ही आपको श्री रघुनाथजी के पास पहुँचा दूँगा।''

हनुमानजी के इन वचनों को सुनकर सीताजी मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं :

''वानरश्रेष्ठ ! पति-भक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष के शरीर का स्वेच्छा से स्पर्श नहीं करना चाहती।''

नारी ! तू नारायणी

आपत्ति के समय भी स्त्री को यथासाध्य परपुरुष का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

रावण का वध और भगवान श्रीराम की विजय होने के बाद विजय की खबर देने के लिए जब हनुमानजी सीताजी के पास गये, उस समय भगवान श्रीराम का संदेश देकर उन्होंने सीताजी से यह भी कहा कि ''जिन राक्षसियों ने आपको पहले बहुत धमकाया, डराया और दुःख दिया है, उन सबको मैं मार डालना चाहता हूँ, आप मुझे आज्ञा दें।''

उस समय सीताजी चाहतीं तो उन सबसे बदला ले सकती थीं परंतु उन्होंने कहा : ''यह सब भाग्य की ही लीला है, इसमें दूसरों का कोई दोष नहीं है। अतः तुम राक्षसियों को मारने की बात मत कहो।''

कितनी प्रज्ञावान और क्षमाशील हैं माँ सीता !

जब सीताजी लंका से अयोध्या लौट आती हैं, तब वे आते ही बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासों के चरणों में प्रणाम करती हैं, घर में रहकर देवताओं का पूजन करती हैं तथा सभी सासों की समान भाव से सेवा करती हैं। इस प्रकार सीताजी घर के सभी कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करके सबको मुग्ध कर देती हैं।

सीताजी ने अपने जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्रीमात्र के लिए यह सिद्ध कर दिखाया कि जो स्त्री आपत्तिकाल में भी धर्म का पालन करेगी, वह सदा के लिए परमानंद में मग्न रहेगी और उसकी कीर्ति संसार में सदा के लिए अमर हो जायेगी।

सीताजी की पति-भक्ति, सासुओं के प्रति सेवा-भाव, सबका सम्मान करने की चेष्टा, सबके साथ यथायोग्य प्रेम का बर्ताव, ऋषियों की सेवा, लव-कुश जैसे वीर पुत्रों को जन्म देना, उनको शिक्षा देने की पटुता, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व, धर्मपरायणता, निर्भयता, क्षमा आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और अनुकरणीय हैं। संसार में जो कोई स्त्री प्रमाद, मोह और आसक्ति को छोड़कर सीताजी के चरित्र का अनुकरण करेगी, उसके अपने कल्याण के विषय में तो कहना ही क्या है, वह अपने पति, पुत्र और कुटुंबवालों का भी उद्धार कर देगी। ऐसी सतीशिरोमणि पतिव्रता स्त्री दर्शन और पूजन के योग्य है तथा अपने चरित्र से जगत को पवित्र करनेवाली है। ■

(पृष्ठ ११ का शेष)

सबकी रुचि का भोजन बनाया। रात के समय सोने की व्यवस्था कर दी । साधुओं के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा का उदय हो गया।

अवधूतजी नहर के किनारे खूब विचरे हुए थे, अतः कहीं-कहीं उनके प्रति श्रद्धा रखनेवाले लोग भी रहा करते थे। एक दिन वे बोले : ''आप लोग अगले डाक बँगले पर रुक जाना मैं वहीं आकर मिलूँगा ।'' वे आगे बढ़ गये । जब हम लोग डाक बँगले पर पहुँचे तो कुछ गृहस्थों को लेकर आये । उन्होंने मुझे साष्टांग दण्डवत् किया । गृहस्थों से बोले : ''ये मेरे गुरु हैं । बड़े महात्मा हैं । तुम लोग जूता दूर निकालकर इन्हें साष्टांग प्रणाम करो । आज यहाँ भिक्षा लेने के लिए प्रार्थना करो।'' उन्होंने वैसा ही किया ।

हमारे साथियों में से कुछ ऐसे थे जो केवल ब्राह्मणों के घर से ही भिक्षा लेते थे । अतः तय हुआ कि एक ब्राह्मण के घर में सबके लिए भोजन बनवाया जाय । वैसा ही हुआ । गाँव से सत्संग करने के लिए लोग इकट्ठे हुए । गणेशजी ने मुझसे कहा : ''यहाँ कुछ लीपा - पोती की बात मत करना । यहाँ खरा वेदांत चलता है । गंगातट के विलक्षण अद्वैत-निष्ठ महात्मा श्री उग्रानन्दजी महाराज यहाँ रहा करते थे ।''

मैंने कहा : ''आप ही सुनाओ ।'' उन्होंने 'विचार-सागर' का दोहा बोल दिया :

जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार।
मति न लखे जेहि मति लखे, सो मैं शुद्ध अपार ॥
जा कृपालु सर्वज्ञ को, हिय धारत मुनि ध्यान ।
ताकों होत उपाधि तें, मो में मिथ्या भान ॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम ।
सो है मेरी आत्मा, काको करूँ प्रणाम ॥

गणेशानन्दजी को अद्वैत सिद्धान्त के सिवाय और कुछ भी भाता नहीं था । ■ **(क्रमशः)**

मोह कभी न ठग सके...

• पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

स्वामी विवेकानंद तब नरेन्द्र कहलाते थे उन दिनों की बात है । काफी समय तक कभी नरेन्द्र का रामकृष्ण परमहंस के चरणों में जाना नहीं होता तो रामकृष्ण भक्तों से पूछने लग जाते कि 'अरे, वह नरेन्द्र नहीं आया ? क्यों नहीं आया ?...'

इस पर नरेन्द्र ने एक बार रामकृष्ण परमहंस से पूछ लिया कि ''गुरुवर ! राजा भरत जब राजपाट छोड़कर वन में रहते हुए भजन करने लगे तो वहाँ एक हिरण में आसक्त हो गये । मरते समय उन्हें उस हिरन की स्मृति आ गयी तो दूसरे जन्म में उन्हें हिरन की योनि में भटकना पड़ा । आप भगवद्-चिंतन छोड़कर 'नरेन्द्र-नरेन्द्र' करते हैं, मेरे को इतना याद करते हैं तो आपका कहीं कुछ ऐसा तो नहीं होगा ?''

बचकाना सवाल है । रामकृष्ण ने खूब अनुभव की डकार देते हुए उत्तर दिया । बोले : ''तुम मुझे गुरु मानते हो, भगवान मानते हो, सत्पुरुष मानते हो, सिद्ध पुरुष मानते हो, संत-महापुरुष मानते हो तो श्रद्धा, भावना व मान्यता से ही मानते हो और ये बदल जाती हैं लेकिन मैं तुम्हें भगवत्स्वरूप से जानता हूँ । इसलिए मैं तुम्हें याद करता हूँ तो भगवत्स्वरूप से याद करता हूँ । तुम मुझे भाव से भगवान तो मानते हो पर मुझे भगवत्स्वरूप जाना नहीं है । भाव में तो परिवर्तन हो जाता है परंतु क्या सत्य अनुभव में परिवर्तन होगा ?''

सत्-चित्-आनंद स्वरूप जो अपना आत्मा है, वही साक्षीस्वरूप है, ब्रह्म है, अद्वैत है । वह अपना आपा ही अनेक रूप हो बैठा है, जो भी महापुरुष ऐसा अनुभव कर लेते हैं उन्हें राजा भरत जैसा खतरा नहीं होता । राजा भरत साधक अवस्था में थे और श्री रामकृष्ण परमहंस सिद्ध अवस्था में थे ।

किसीको याद करते समय ज्ञानी उसे सत्-चित्-आनंद स्वरूप से याद करेगा, संसारी नाम-रूप से याद करेगा तथा साधक मिश्रित रूप से याद कर लेगा । अगर साधक की नजर नाम-रूप पर है तो फिर वह उनके चक्कर में आ जायेगा ।

रामकृष्णदेव ने कहा : ''तुम मुझे जानकर भगवान नहीं मानते हो किंतु मैं तुम्हें ठीक से जानता हूँ । मैं नरेन्द्र को याद करूँ अथवा सोहन या सुग्रीव को याद करूँ, मोहन या महेश को याद करूँ परंतु मैं जानता हूँ कि सभी मुक्तस्वरूप, मेरा आपा है । मैं ऐसा जानकर चिंतन करता हूँ इसलिए वह कानून मेरे पर लागू नहीं होगा ।''

ज्ञानी किसीका चिंतन करे और ज्ञानी की दुर्गति हो ऐसा नहीं हो सकता । दुर्गति तो मोह से होती है, अज्ञान से होती है, स्वार्थ से होती है । जिसको परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो गया है उसकी दुर्गति का सवाल ही नहीं उठता ।

ब्रह्मज्ञानी किसीको याद करते हैं तो उसमें उनकी ममता हो जायेगी या फिर उसीके घर ब्रह्मज्ञानी को जन्म लेना पड़ेगा ऐसी बेवकूफी में नहीं आना चाहिए ।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष ।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश ॥ ■

संत बालकरामजी का योग सामर्थ्य

• पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

(गतांक से आगे)

परंतु बालकरामजी ने औरंगजेब की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और आगे की यात्रा प्रारंभ की।

संत बालकरामजी अपने भक्तों के साथ ऐसे स्थान में पहुँचे जहाँ मदन भारती नामक एक वाममार्गी संन्यासी रहता था। वह मारण, वशीकरण आदि नीच क्रियाएँ करता था तथा अनेक रोगों का इलाज करता था। इसी कारण उसके पास बहुत लोग आते थे। बहुत लोग उसका शिष्यत्व भी स्वीकार कर चुके थे। उस इलाके में सर्वत्र वाममार्ग फैल चुका था। प्रतिदिन असंख्य हिंसाएँ होतीं और लोग मद्यपान में ही मशगूल रहते।

यह दुःखद दृश्य देखकर बालकरामजी का हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने कहा : ''हे भाइयो ! श्रीहरि का भक्तिमार्ग छोड़कर क्यों इस भ्रष्टमार्ग रूपी कीचड़ में कूद रहे हो ? यह कुकृत्य करनेवाला इन्सान संसार में कभी भी सुखी नहीं रह सकता और मरने के बाद नरक में जाता है। इस कुमार्ग को त्यागकर भवसागर से तरने का उपाय साध लो।''

भक्तिपूर्ण प्रेमभरा उपदेश सुनकर कई लोग भक्तिमार्ग स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये। मदन भारती को पता चला तो क्रोधित होकर अपने शिष्यों के साथ बालकरामजी के पास जाकर बोला : ''आप यहाँ से चले जाओ अथवा अपनी शक्ति दिखाओ। आप मरे हुए व्यक्ति को जीवित कर दो, तब आपका सामर्थ्य जानेंगे और हम भी आपका धर्म स्वीकार कर लेंगे।''

एक मुर्दा खोजकर लाया गया, जिसमें से तीव्र दुर्गंध आ रही थी। मदन भारती बोला : ''बाबाजी ! इस मुर्दे को जिन्दा कर दो।''

बालकरामजी ने हँसते-हँसते कहा : ''मैं कोई चमत्कार नहीं जानता। मैं तो भगवान का खिलौना हूँ, वह जैसे खिलाता है वैसे मैं खेलता हूँ।''

वे सरल चित्त से प्रार्थना करने लगे : ''जिस नाम के प्रभाव से पानी में पत्थर तैरे, गहन वन में सूखे हुए वृक्ष पर मंजरी आ गयी, उसी परम पवित्र रामनाम के प्रताप से यह मुर्दा भी जीवित हो जाय।''

कुछ क्षण बाद उन्होंने मृत व्यक्ति के कान में रामनाम का उच्चारण किया। रामनाम का ऐसा प्रभाव कि आस-पास बैठे सभी लोगों की हाजिरी में वह मृत व्यक्ति उठकर बैठ गया।

वाममार्गी संन्यासियों ने बालकरामजी का शिष्यत्व

स्वीकार किया । उस देश के राजा ने भी उनसे दीक्षा ली। यह देखकर मदन भारती उसी समय वह स्थान छोड़कर चला गया।

बालकरामजी ने वहाँ पर एक मठ और धर्मशाला बनवायी। कुछ कुशल वैष्णवों को उसका कार्यभार सौंपकर वे जगन्नाथपुरी के लिए चल पड़े। आनंद-उल्लास मनाते हुए वे जगन्नाथपुरी पहुँचे । सिंहद्वार में आकर उन्होंने पतितपावन भगवान के दर्शन किये और श्रीमंदिर की तीन बार प्रदक्षिणा करके श्रीभगवान को साष्टांग प्रणाम किया।

मणिकोठा में नीलाचल के नीलकांत मणिकांत भगवान के दर्शन कर वे घंटों ध्यान-समाधि में बैठे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीमंदिर के सेवक, ब्राह्मण व साधु-संतों को बहुमूल्य वस्त्राभूषण, द्रव्य आदि देकर संतुष्ट किया और अपना शेष जीवन जगन्नाथपुरी में ही ध्यान-भजन करके बिताने का निश्चय किया। वे इन्द्रद्युम्न सरोवर के पास एक सुरम्य मठ बनाकर वहाँ रहने लगे।

दिन बीते, सप्ताह और वर्षों की कतारें बीत गयीं। बालकरामजी ने देखा कि अब शरीर की उम्र पूरी होने को है। वे शिष्यों को बोले : ''अब हम शरीर से जानेवाले हैं लेकिन आत्मरूप से तो सर्वव्यापक सत्ता में रहेंगे ही।''

समाधि के लिए गड्ढा खुदवाया गया। बालकरामजी ने शिष्यों से कहा : ''हम लेटकर प्राण ऊपर चढ़ा देंगे। तुम लोग मेरे शरीर के ऊपर पुष्प आदि पदार्थों को रखकर मिट्टी से ढक देना।''

उनके शिष्यों ने वैसा ही किया। कुछ लोभी तत्त्वों ने पुरी के राजा मुकुन्ददेव को भड़काया कि 'मठ में बहुत माल है। इनके शिष्य खा जायेंगे। सब हड़प जायेंगे।'

राजा ने सिपाही भेजकर आश्रमवासियों तथा पाठशाला के बच्चों को बाहर निकलवाकर मठ पर कब्जा कर लिया।

सभी शिष्य गुरु महाराज के समाधिस्थल के पास जाकर बोले : ''महाराज ! हम लोग क्या करें ?''

आवाज आयी कि 'तुम लोग डरो मत, समाधि पर से आवरण हटा दो।'

आवरण हटाते ही बालकरामजी उठकर खड़े हो गये और सिपाहियों से कहा : ''ऐ मूर्खो ! मैं जिन्दा हूँ। मेरी सम्पत्ति को क्यों जब्त किया ? जाकर राजा से बोल दो कि जिन्दा साधु-संतों की सम्पत्ति लेते हो, मरने के बाद भी साधु की सम्पत्ति लेने से राज्य तबाह हो जायेगा । मैं अभी हूँ। जब तक राजा नहीं मरेगा तब तक मैं भी नहीं जाऊँगा।''

संतों ने राजा से कहा : ''औरंगजेब को मुँह की खानी पड़ी। संतों के आगे भगवान भी घुटने टेकते हैं तो तू कौन होता है ? यह अलमस्त संतों की दुनिया है, यह कुछ अलग होती है।''

राजा ने आकर माफी माँगी। दसवें दिन राजा मर गया। उसके बाद धर्म की सम्पत्ति हड़पने की किसीने हिम्मत नहीं की। कुछ वर्षों बाद बालकरामजी फिर समाधिस्थ हो गये । अभी भी बालकरामजी का मठ जगन्नाथपुरी में गूँटी चौक में है।

बालकरामजी शरीर से तो सदा के लिए सो गये लेकिन उनके संकल्पबल, तितिक्षा और तप की खबरें आज भी लाखों लोगों तक पहुँच रही हैं। जो ईश्वर के लिए कष्ट सह लेता है, ईश्वर अपनी प्रकृति को उसकी दासी बना देते हैं।

मनुष्य में ऐसी शक्ति है कि वह जैसा संकल्प करे वैसा हो सकता है । कुछ भी असंभव नहीं है, सब कुछ संभव है। ■

गुरुप्रज्ञा प्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः । यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥

'मूर्ख हो अथवा पंडित हो, जो गुरु के ज्ञानरूपी प्रसाद से आत्मतत्त्व को ठीक प्रकार से जान लेता है, वह संसाररूपी भवसागर से विरक्त हो जाता है (जन्म-मरण से छूट जाता है)।' **(अवधूत गीता : २.२३)**

ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के अमृतवचन

जननी जने तो भक्तजन या दाता या शूर

(गतांक से आगे)

अर्जुन ने उर्वशी से कहा : ''माता ! पुत्र के समक्ष ऐसी बातें करना योग्य नहीं है । आपको मुझसे ऐसी आशा रखना व्यर्थ ही है ।''

तब उर्वशी अनेक प्रकार के हाव-भाव करके अर्जुन को अपने प्रेम में फँसाने की कोशिश करती है परंतु सच्चा ब्रह्मचारी किसी भी प्रकार चलित नहीं होता, वासना के हवाले नहीं होता । उर्वशी अनेक दलीलें देती है परंतु अर्जुन ने अपने दृढ़ इन्द्रिय-संयम का परिचय देते हुए कहा :

गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि।
त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत् त्वया ॥

'हे वरवर्णिनी ! मैं तुम्हारे चरणों में शीश झुकाकर तुम्हारी शरण में आया हूँ । तुम वापस चली जाओ । मेरे लिए तुम माता के समान पूजनीया हो और मुझे पुत्र के समान मानकर तुम्हें मेरी रक्षा करनी चाहिए ।'

(महाभारत : वनपर्व. : ४६.४७)

अपनी इच्छा पूर्ण न होने से उर्वशी ने क्रोधित होकर अर्जुन को शाप दिया : ''जाओ, तुम एक साल के लिए नपुंसक बन जाओगे ।'' अर्जुन ने अभिशप्त होना मंजूर किया परंतु पाप में डूबे नहीं।

प्यारे नौजवानो ! इसीका नाम है सच्चा ब्रह्मचारी । इस समय मुझे एक दूसरा दृष्टांत भी याद आ रहा है :

एक मुसलमान लुहार की कथा

एक मुसाफिर ने रोम देश में एक मुसलमान लुहार को देखा । वह लोहे को तपाकर, लाल करके उसे हाथ में पकड़कर वस्तुएँ बना रहा था, फिर भी उसका हाथ जल नहीं रहा था । यह देखकर मुसाफिर ने पूछा :

''भैया ! यह कैसा चमत्कार है कि तुम्हारा हाथ जल नहीं रहा !''

लुहार : ''इस फानी (नश्वर) दुनिया में मैं एक स्त्री पर मोहित हो गया था और उसे पाने के लिए सालों तक कोशिश करता रहा परंतु उसमें मुझे असफलता ही मिलती रही । एक दिन ऐसा हुआ कि जिस स्त्री पर मैं मोहित था उसके पति पर कोई मुसीबत आ गयी।

उसने अपनी पत्नी से कहा : 'मुझे रुपयों की अत्यधिक आवश्यकता है । यदि रुपयों का बंदोबस्त न हो पाया तो मुझे मौत को गले लगाना पड़ेगा । अतः तुम कुछ भी करके, तुम्हारी पवित्रता बेचकर भी मुझे रुपये ला दो ।' ऐसी स्थिति में वह स्त्री, जिसको मैं पहले से ही चाहता था, मेरे पास आयी । उसे देखकर मैं बहुत ही खुश हो गया । सालों के बाद मेरी इच्छा पूर्ण हुई। मैं उसे एकांत में ले गया । मैंने उससे आने का कारण पूछा तो उसने सारी हकीकत बतायी । उसने कहा : 'मेरे पति को रुपयों की बहुत आवश्यकता है । अपनी इज्जत व शील को बेचकर भी मैं उन्हें रुपये देना चाहती हूँ। आप मेरी मदद कर सकें तो आपकी बड़ी मेहरबानी।'

तब मैंने कहा : 'थोड़े रुपये तो क्या, यदि तुम हजार रुपये माँगोगी

तो भी मैं देने को तैयार हूँ।'

मैं कामांध हो गया था, मकान के सारे खिड़की-दरवाजे बंद किये। कहीं से थोड़ा भी दिखायी दे ऐसी जगह भी बंद कर दी, ताकि हमें कोई देख न ले। फिर मैं उसके पास गया।

उसने कहा : 'रुको ! आपने सारे खिड़की-दरवाजे, छेद व सुराख बंद किये हैं, जिससे हमें कोई देख न सके लेकिन मुझे विश्वास है कि कोई हमें अभी भी देख रहा है।'

मैंने पूछा : 'अभी भी कौन देख रहा है ?'

'ईश्वर ! ईश्वर हमारे प्रत्येक कार्य को देख रहे हैं। आप उनके आगे भी कपड़ा रख दो ताकि आपको पाप का प्रायश्चित्त न करना पड़े।'

उसके ये शब्द मेरे दिल के आर-पार उतर गये। मेरे पर मानो हजारों घड़े पानी ढुल गया। मुझे कुदरत का भय सताने लगा। मेरी समस्त वासना चूर-चूर हो गयी। मैंने भगवान से माफी माँगी, पाप का प्रायश्चित्त किया और अपने इस कुकृत्य के लिए बहुत ही पश्चात्ताप किया। मेरे पापी दिल को मैंने बहुत ही कोसा। परमेश्वर की अनुकंपा मुझ पर हुई। भूतकाल में किये हुए कुकर्मों की माफी मिली, इससे मेरा दिल निर्मल हो गया। जहाँ देखूँ वहाँ प्रत्येक वस्तु में खुदा का ही नूर दिखने लगा। मैंने सारे खिड़की-दरवाजे खोल दिये और रुपये लेकर उस स्त्री के साथ चल पड़ा। वह स्त्री मुझे अपने पति के पास ले गयी। मैंने रुपयों की थैली उसके पास रख दी और सारी हकीकत सुनायी। उस दिन से मुझे प्रत्येक वस्तु में खुदाई नूर दिखने लगा है। तबसे अग्नि, वायु व जल मेरे अधीन हो गये हैं।

सचमुच, भगवान शंकर ने कहा है :

सिद्धे बिन्दौ महादेवि किं न सिद्ध्यति भूतले ?

'हे पार्वती ! बिंदु अर्थात् वीर्यरक्षण सिद्ध होने के बाद इस पृथ्वी पर ऐसी कौन-सी सिद्धि है कि जो सिद्ध न हो सके ?'

वृद्धावस्था तथा अनेक छोटी-बड़ी बीमारियाँ ब्रह्मचर्य के पालन से दूर भागती हैं, सौ साल से पहले मौत नहीं आती। अस्सी वर्ष की उम्र में भी आप चालीस साल के दिखते हो। शरीर का प्रत्येक हिस्सा स्वस्थ, सुदृढ़ व मजबूत दिखता है - इसमें बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं है। आप भीष्म पितामह की हकीकत पढ़ो। उनकी उम्र १०५ साल की थी, फिर भी महाभारत के युद्ध में लड़ रहे थे। वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण जैसी महान विभूतियाँ भी उनके साथ युद्ध करने में सकुचाती थीं। हजारों योद्धा उनके बाणों का निशाना बनकर युद्ध में मौत को गले लग गये थे।

आप जानते हो उनकी मृत्यु कैसे हुई ? उन्होंने कहा था कि मैं केवल वीरों के साथ ही युद्ध करूँगा और क्षत्रिय धर्म का पालन करूँगा। जिनमें प्रबल शक्ति हो वे आकर सामना करें परंतु मैं स्त्री के साथ युद्ध नहीं करूँगा। परमेश्वर श्रीकृष्ण ने जानबूझकर उनके सामने शिखण्डी को खड़ा कर दिया। भीष्म पितामह ने उसे देखकर पीठ कर ली क्योंकि भीष्मजी शिखण्डी को इस जन्म में भी स्त्री ही मानते थे। अवसर मिलते ही अर्जुन ने बाणों की वर्षा कर दी, इससे पितामह भीष्म घायल होकर धरती पर गिर पड़े। आजकल ऐसे ब्रह्मचारी भाग्य से ही मिलते हैं।

वर्तमान परिस्थितियों में भारतवर्ष को ऐसे ब्रह्मचारियों की विशेष आवश्यकता है। यह है ब्रह्मचर्य की महिमा ! हमें ऐसी महान विभूतियों के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए।

हमारी शारीरिक स्थिति दया के योग्य है। कर्तव्य है कि हम शीघ्र सावधान होकर ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों को अपना लें और परमात्मा की भक्ति के द्वारा प्रतिष्ठामय दिव्य जीवन व्यतीत करें। **(क्रमशः)**

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'निरोगता का साधन' से)

त्याग और प्रेम

भगवान में जिस प्रकार ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार उनका माधुर्य भी अनंत है । वे छः दिन की अवस्था में पूतना के प्राण चूसकर ऐश्वर्य की लीला करते हुए ही, अपनी अहैतुकी कृपा से उसे वह गति भी प्रदान कर देते हैं जो कि बड़े-बड़े तपस्वी, योगियों को भी बड़ी कठिनाई से मिलती है । उन्होंने ब्रह्मा के अभिमान का नाश करने के लिए और गौओं तथा गोप-गोपियों के वात्सल्य-प्रेम की लालसा को पूर्ण करने के लिए स्वयं वत्स एवं वत्सपाल बनकर अपने ऐश्वर्य तथा माधुर्य को प्रकट करनेवाली कैसी अद्‌भुत लीला की !

जो प्रभु अपने प्रेमी के लिए अपनी ऐश्वर्य-शक्ति को भूलकर प्रेमी के वश में हो जाते हैं, अपने प्रेमी को प्रेमास्पद बनाकर स्वयं उसके प्रेमी बन जाते हैं, उस प्रेमी के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए पत्र-पुष्प, फल-जल आदि साधारण-से-साधारण पदार्थों के लिए लालायित रहते हैं, उन प्रभु के साथ प्रेम न करके यह मनुष्य उनसे प्रेम करता है, जो इससे प्रेम करना नहीं चाहते । यह उनको चाहता है, जो इसे नहीं चाहते । उनको अपना मानता है, जो कभी इसके नहीं हुए । इससे बड़ा प्रमाद और क्या होगा !

सुख-भोग की इच्छा उत्पन्न कैसे होती है और इसका त्याग कैसे हो सकता है ? विचार करने पर पता लगता है कि इसके त्याग के दो उपाय हैं - एक विचार, दूसरा प्रेम क्योंकि अविचार के कारण शरीर में अहंभाव हो जाने से और उससे संबंध रखनेवाले पदार्थों में मेरापन हो जाने के कारण ही भोगेच्छाओं की उत्पत्ति होती है ।

यह हरेक मनुष्य के अनुभव की बात है कि जब उसका किसीके प्रति क्षणिक प्रेम भी होता है, तब उस समय वह अनायास प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रेमास्पद को सुख देने की भावना से अपने सुख का त्याग कर देता है । उस समय उपभोग की स्मृति लुप्त हो जाती है और उसे अपने प्रेमास्पद को सुख देने में ही रस मिलता है । उस रस के सामने उपभोग का रस फीका पड़ जाता है । जब साधारण प्रेम की यह बात है, तब जो प्रेम के तत्त्व को जाननेवाले हैं, हरेक प्राणी के साथ सदा ही प्रेम करते हैं, प्रेम ही जिनका स्वभाव है, ऐसे परम प्रेमास्पद प्रभु के प्रेम की जिसको लालसा है, उस प्रेमी की सब प्रकार की सुखभोग-संबंधी इच्छाओं का त्याग अपने-आप बिना प्रयत्न के हो जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रेम से भी इच्छाओं का त्याग अनायास ही हो सकता है ।

जितनी भी उपभोग की इच्छाएँ हैं, वे सब शरीर में अहंभाव हो जाने के कारण उत्पन्न होती हैं । शरीर के साथ एकता न होने पर किसीके मन में उपभोग की इच्छा नहीं होती । अतः विचार के द्वारा जब मनुष्य यह समझ लेता है कि 'शरीर मैं नहीं हूँ' तब भोगेच्छाओं का त्याग अपने-आप हो जाता है और इच्छाओं का सर्वथा अभाव हो जाना ही अंतःकरण की शुद्धि है । **त्याग और प्रेम का घनिष्ठ संबंध है । प्रेम से त्याग होता है और त्याग से प्रेम पुष्ट होता है ।** अपने प्रेमास्पद प्रभु के नाते हरेक प्राणी को सुख पहुँचाने की भावना से मनुष्य का अंतःकरण बहुत ही शीघ्र शुद्ध होता है और विशुद्ध अंतःकरण में प्रेमास्पद प्रभु के प्रेम की लालसा आपने-आप प्रकट हो जाती है।

साधक को चाहिए कि प्राप्त शक्ति के द्वारा प्रभु के नाते दूसरों के अधिकार की पूर्ति करता रहे और किसी पर अपना कोई अधिकार न समझे । शरीर-निर्वाह के लिए आवश्यक पदार्थों को भी दूसरों की प्रसन्नता के लिए, उनके अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए ही स्वीकार करे, जो कि लेने के रूप में भी देना ही है। इस शरीर से जिनके अधिकार की पूर्ति होती है, उनका ही तो इस पर अधिकार है । जब साधक शरीर और प्राप्त वस्तु तथा सब प्रकार की शक्तियों को अपने प्रभु की मानता है, उन पर अपना कोई अधिकार नहीं मानता, उनसे किसी प्रकार के उपभोग की आशा भी नहीं करता, तब उसके द्वारा जो कुछ होता है, वह त्याग और प्रेम ही है, जो अंतःकरण की शुद्धि का मुख्य साधन है । ■

स्वास्थ्य संजीवनी

वसन्त ऋतु में ध्यान दें

१८ फरवरी से १९ अप्रैल तक

- वसन्त ऋतु में भारी, अम्लीय, स्निग्ध और मधुर आहार का सेवन व दिन में शयन वर्जित है।
- **'वसन्ते भ्रमणे पथ ।'** - वसन्त ऋतु में खूब पैदल चलना चाहिए । व्यायाम-कसरत विशेषरूप से करना चाहिए।
- इन दिनों में तेल-मालिश, उबटन लगाना व नाक में तेल (नस्य) डालना विशेष लाभदायी है । नस्य व मालिश के लिए तिल तेल सर्वोत्तम है।
- अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वसन्त ऋतु में गौमूत्र का सेवन विशेष लाभदायी है।
- सुबह ३ ग्राम हरड़ चूर्ण में शहद मिलाकर लेने से भूख खुलकर लगेगी। कफ का भी शमन हो जायेगा।
- इन दिनों में हलके, रूखे, कड़वे, कसैले पदार्थ, लोहासव, अश्वगंधारिष्ट अथवा दशमूलारिष्ट का सेवन हितकर है।
- हरड़ चूर्ण को गौमूत्र में भिगोकर धीमी आँच पर सेंक लें । जलीय भाग जल जाने पर उतार लें । इसे 'गौमूत्र हरितकी' कहते हैं । रात को ३ ग्राम चूर्ण गुनगुने पानी के साथ लें। इससे गौमूत्र व हरड़ दोनों के गुणों का लाभ मिलता है।

कड़वा रस : स्वास्थ्य-रक्षक उपहार

वसन्त ऋतु में कड़वे रस का सेवन विशेष लाभदायी है। इस ऋतु में नीम की १५-२० कोंपलें व तुलसी की -१० कोमल पत्तियाँ २-३ काली मिर्च के साथ खूब बा-चबाकर खानी चाहिए। ब्रह्मलीन स्वामी श्री लाशाहजी महाराज यह प्रयोग करते थे। पूज्य बापूजी कभी-कभी यह प्रयोग करते हैं। इसे १५-२० दिन ने से वर्ष भर चर्मरोग, रक्तविकार और ज्वर आदि ों से रक्षा करने की प्रतिरोधक शक्ति पैदा होती है। के अलावा नीम के फूलों का रस ७ से १५ दिन तक ने से त्वचा के रोग और मलेरिया जैसे ज्वर से भी बचाव होता है। इस ऋतु में सुबह खाली पेट हरड़ का चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

१९ मार्च को चैत्री नूतन वर्षारंभ अर्थात् गुड़ी पड़वा (वर्ष प्रतिपदा) है। इस दिन स्वास्थ्य-सुरक्षा तथा चंचल मन की स्थिरता के लिए नीम की पत्तियों को मिश्री, काली मिर्च, अजवायन आदि के साथ प्रसाद के रूप में लेने का विधान है। आजकल अलग-अलग प्रकार के बुखार, मलेरिया, टायफाइड, आँतों के रोग, मधुमेह, मेदवृद्धि, कोलेस्टेरोल का बढ़ना, रक्तचाप जैसी बीमारियाँ बढ़ गयी हैं। इसका प्रमुख कारण भोजन में कड़वे रस का अभाव है। भगवान आत्रेय ने 'चरक संहिता' में कहा है :

तिक्तो रसः स्वयमरोचिष्णुरप्यरोचकघ्नो विषघ्नः कृमिघ्नो मूर्च्छादाहकण्डूकुष्ठतृष्णाप्रशमनस्त्वङ्मांसयोः स्थिरीकरणो ज्वरघ्नो दीपनः पाचनः स्तन्यशोधनो लेखनः क्लेदमेदोवसामज्जलसीकापूयस्वेदमूत्रपुरीषपित्त-श्लेष्मोपशोषणो रूक्षः शीतो लघुश्च ।

'कड़वा रस स्वयं अरुचिकर होता है किंतु सेवन करने पर अरुचि को दूर करता है। यह शरीर के विष व कृमियों को नष्ट करता है, मूर्च्छा (बेहोशी), जलन, खुजली, कोढ़ और प्यास को नष्ट करता है, चमड़े व मांसपेशियों में स्थिरता उत्पन्न करता है (उनकी शिथिलता को नष्ट करता है)। यह ज्वरशामक, अग्निदीपक, आहारपाचक, दुग्ध का शोधक और लेखन (स्थूलता घटानेवाला) है । शरीर का क्लेद, मेद, चर्बी, मज्जा, लसीका (lymph), पीब, पसीना, मल, मूत्र, पित्त और कफ को सुखाता है। इसके गुण रुक्ष, शीत और लघु हैं।' ■

(सूत्रस्थान, अध्याय-२६)

अंक १६९ में जो स्थलबस्ति का लेख प्रकाशित किया गया है, उसमें अश्विनी मुद्रा को ही योनि-संकोचन (योनि को संकुचित करना और फैलाना) कहते हैं।

हिन्दुओ ! अपने धर्म की रक्षा करो

- महामना मालवीयजी

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी हिन्दू धर्म व संस्कृति के मूर्तिमान प्रतीक थे। जब वे गोलमेज सम्मेलन में गाँधीजी के साथ लंदन गये थे तो गंगाजल और अपनी साधन-सामग्री लेकर गये थे। साधन करते-करते परमात्मा में शांत होना तो वे जान ही गये थे। 'श्रीमद्भागवत' का पाठ उनका नियमित रूप से चलता था। लंदन के अति व्यस्त कार्यक्रम में भी वे नियमित 'श्रीमद्भागवत' का पाठ करते थे। जब वे गद्गद कंठ से भाव समझते हुए 'श्रीमद्भागवत' के श्लोक पढ़ने लगते तो उनके दोनों नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बह चलती थी। पुराणों के विषय में वे कहते थे : 'मैं पुराणों की सत्यता के संबंध में प्रत्येक समय शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हूँ।'

हिन्दू धर्म के विषय में उनके ये उद्गार बड़े ही अर्थपूर्ण और प्रासंगिक हैं :

केवल व्यावसायिक उन्नति से ही किसी देश की जनता का सुख तथा समृद्धि सुरक्षित नहीं रह सकती। आचार की उन्नति करना आर्थिक उन्नति से कहीं अधिक महत्त्व रखता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने धर्म को अपनाता है। हिन्दुओं को इससे विचलित नहीं होना चाहिए।

समस्त संसार में हिन्दुओं की ही एक ऐसी जाति है, जिसने धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दिया है। यही जाति पृथ्वी पर ऐसी रह गयी है जो वेद-शास्त्रों पर अगाध श्रद्धा रखती है। यही एक जाति है जो न केवल आत्मा की अमरता पर विश्वास रखती है बल्कि अनेकता में एकता को भी प्रत्यक्ष देखती है। ये ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों समस्त विश्व अपनाना चाहेगा, इनकी आवश्यकता का अनुभव करेगा; एक दिन उसे अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होना ही पड़ेगा। उस समय यही हिन्दू जाति उसे मार्ग दिखलायेगी। यदि यही मिट गयी तो क्या होगा ? मानव-जाति को फिर 'क, ख, ग...' से प्रारंभ करना होगा।

लोग इसका खंडन करते हैं बिना समझे-बूझे ही; वे इसके शास्त्रों का मजाक उड़ाते हैं बिना उनकी गहराई का अंदाजा किये हुए ही। वे इसकी उपेक्षा करते हैं, बिना भलीभाँति इसका अध्ययन किये हुए ही। आज तक किस विदेशी ने इसके मर्म को पहचाना है ? किसने इसका परिपूर्ण अवगाहन किया है ? यह तो विश्व का कर्तव्य है कि इस जाति की रक्षा करे।

अरे, हिन्दुत्व का परित्याग करके भारतीय राष्ट्रीयता जीवित नहीं रह सकती। राष्ट्रीयता का आधार सुरक्षित रहना चाहिए। यहाँ न तो संकरता अभीष्ट है और न दुर्बलता क्योंकि आदर्श की प्रतिष्ठा उसके द्वारा ही होती है।

उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दू धर्मोऽयमुच्यते ।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वलोकहितैषिभिः ॥

'सब धर्मों में हिन्दू धर्म उत्तम कहा गया है। सब हितैषी लोगों के द्वारा इसकी रक्षा की जानी चाहिए, इसका प्रचार किया जाना चाहिए।'

हिन्दू धर्म की शिक्षा क्या है ? यह धर्म हमें औरों के मतों का मान करना सिखलाता है, सहनशील होना बतलाता है। यह किसी पर आक्रमण करने की शिक्षा नहीं देता पर साथ ही यह आदेश भी देता है कि यदि तुम्हारे धर्म पर कोई आक्रमण करे तो उसकी रक्षा के लिए प्राण तक न्योछावर करने में संकोच न करो।

पीपल के वृक्ष की तरह इस हिन्दू धर्म की जड़ें बहुत गहरी और दूर तक फैली हुई हैं। ऋषियों के तपोबल तथा केवल वायु एवं जल के आहार पर की गयी तपस्या ने इसकी रक्षा की और इसलिए यह कल्पलता आज भी हरी है। उन्हींकी तपस्या के कारण हिन्दू जाति आज भी जीवित है। अनगिनत जातियाँ यहाँ आयीं, हजारों हमले हुए परंतु परमात्मा की कृपा से हिन्दू धर्म आज भी

(‘ऋषि प्रसाद’ प्रतिनिधि)

३० दिसम्बर ०६ से २ जनवरी ०७ (दोपहर) तक **बान्द्रा (मुंबई, महा.)** में अपनी हृदयस्पर्शी अमृतवाणी की वर्षा करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ‘‘एक होती है वासना और दूसरी होती है इच्छा। इच्छा और वासना इस जीव को तृप्ति के लिए बाहर भटकाती हैं। उनकी जगह पर भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा डाल दो तो वह इच्छा-वासना का पेट फाड़ के भगवद् विश्रांति में ले जायेगी।’’

इस बार पूज्य बापूजी की पूर्णिमा-दर्शन व भक्ति, योग, ज्ञान वर्षा कार्यक्रम शृंखला दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर बढ़ती गयी है। पूर्णिमा दर्शन कार्यक्रम २ जनवरी (दोपहर) तक **मुंबई** में तथा २ (दोपहर) से ३ जनवरी (सुबह) तक **अमदावाद** व ३ जनवरी (दोपहर) से **जयपुर** (राज.) में सम्पन्न हुआ।

अमदावाद आश्रम में पूर्णिमा के अवसर पर पूज्यश्री ने ऑडियो कैसेट - भक्ति भावामृत (भजन), भक्ति सुमन (भजन-उड़िया भाषा), वी.सी.डी. - वास्तविक आराम तथा एम.पी. ३ - ज्ञान का शिखर (सत्संग), श्री सुरेशानंदजी के भजनों का संग्रह- दीपांजलि भजनामृत (भजन) का विमोचन किया। इनको देखना और सुनना लाभदायी है।

प्राणिमात्र के कल्याण में रत पूज्यश्री का हृदय अंग्रेजी नूतन वर्ष के निमित्त हजारों मूक प्राणियों की हत्या का समाचार सुनकर व्यथित हो उठा।

पूज्यश्री ने कहा : ‘‘कल सुबह अखबार सुनकर मेरे को तो नाराजी हो गयी कि अंग्रेजी नूतन वर्ष मनाने के लिए डेढ़ लाख बकरे कटे, ६५ हजार अन्य जानवरों का खून बहा और ३८ हजार लीटर दारू बिकी। खून में रँगा हुआ यह नूतन वर्ष कैसा और वह भी हिन्दुस्तान में और केवल मुम्बई में!’’

फिर देशवासियों का आह्वान करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ‘‘आप भारतीय संस्कृति के अनुसार भगवद्भक्ति के गीत से ‘चैत्री नूतन वर्ष’ मनायें। आप सब अपने बच्चों तथा अपने आस-पास के वातावरण को भारतीय संस्कृति में मजबूत रखें। यह भी एक प्रकार की देशसेवा होगी, मानवता की सेवा होगी।’’

अमदावाद आश्रम में ‘मकर संक्रांति’ के निमित्त १२ से १४ जनवरी तक ‘उत्तरायण ध्यान योग शिविर’ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर ‘यौवन सुरक्षा (पंजाबी), श्री विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र (उड़िया)’ पुस्तकों का विमोचन हुआ।

ध्यान, योग व ज्ञान की त्रिवेणी में अवगाहन कराते हुए पूज्यश्री ने बताया : ‘‘मनुष्य-जीवन में रति, प्रीति, संतुष्टि और तृप्ति चाहिए। अगर आत्मा में रति नहीं होगी तो कामविकार में रति होगी, कमरतोड़ कार्यक्रम करके थक जायेगा। आत्मा में प्रीति नहीं होगी तो संसार की चीजों में प्रीति कर-करके थक के मरेगा। आत्मा में तृप्ति नहीं होगी तो शराब-कबाब के द्वारा तृप्ति पाने का यत्न करेगा। आप तृप्ति, संतुष्टि अपने आत्मा में रखो और व्यवहार संसार का करो। बिनजरूरी व्यवहार काट दो और जो जरूरी व्यवहार है वह पूरा कर दो। व्यवहार का फल ईश्वर को अर्पण कर दो और ईश्वर-चिंतन, ध्यान तथा परमात्म-तत्त्व के ज्ञान से रति, तृप्ति व संतुष्टि पाओ।

मनुष्य-जन्म का यही तो जन्मसिद्ध अधिकार है ! काहे को उसे गँवाओ ?’’

जीवित है।

आपको हिन्दू शक्ति को जगाना है जिससे कोई आप र हाथ न उठाये, उस शक्ति को जगाना है कि जिससे आप पृथ्वी पर ऊँचा माथा करके इज्जत के साथ चल सकें। इसलिए हिन्दू संगठन की आवश्यकता है। जो माई के सच्चे सपूत हैं, जो सोच सकते हैं, जिनका दिमाग अच्छा है, वे एक हों- संगठित हों।

कौन नहीं जानता की हिन्दू धर्म संसार के सब धर्मों में दार है। इतनी उदारता और किसी धर्म में है ? किसी धर्म भूतमात्र की चिंता का विधान है ? लोग क्यों उन्हें अहिन्दू बनाने पर तुले हैं ?

हिन्दुओ ! अपने धर्म की रक्षा करो, आपत्काल पर विचार करो और समय की प्रगति पर ध्यान दो।

संसार में हिन्दू जाति का दूसरा कोई देश नहीं है। अन्य जातियों के लिए तो दूसरे देश भी हैं पर हिन्दुओं के लिए केवल हिन्दुस्तान है। उनके लिए यही सर्वस्व है। यही उनकी मूर्तियों और मंदिरों का स्थान है। अतः इस देश में सुख-शांति स्थापित करने का दायित्व उन्हींका है। ■

(‘मालवीयजी के सपनों का भारत’ से संकलित)

'उत्तरायण ध्यान योग शिविर' में 'बाल संस्कार एवं विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर प्रशिक्षण' का आयोजन किया गया, जिसमें १२०० से अधिक केन्द्र संचालकों को प्रशिक्षित किया गया। इस प्रशिक्षण में 'बाल संस्कार केन्द्र' तथा 'विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर' के परिचय, उद्देश्य एवं व्यवस्थापन से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं से अवगत कराया गया। 'बच्चों को हँसते-खेलते वैदिक संस्कृति के दिव्य ज्ञान से संस्कारित कैसे करें ? उनका शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक उत्थान कैसे हो ?'- विद्यार्थी-जीवन का उत्कर्ष साधनेवाले ऐसे विशेष सूत्रों को प्राप्त कर प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षित हुए। शिविरों में बच्चों को प्रशिक्षित करने हेतु 'वक्तृत्व परीक्षण' के द्वारा शिविर शिक्षकों का चयन किया गया।

१५ जनवरी की सुबह पूज्य बापूजी से प्रश्न करके अपनी गुत्थियों को सुलझाने का मंगलमय सुअवसर प्रशिक्षणार्थियों को प्राप्त हुआ। प्रशिक्षणार्थियों को विद्यार्थियों के उत्थान तथा स्वयं की सेवा-साधना के विकास हेतु ७ सूत्र बताते हुए पूज्यश्री ने कहा :

१. बच्चों को सिखाने से पूर्व थोड़ा चुप होकर, ईश्वर में खोकर उनके मंगल की कामना करके फिर बोलें।

२. विद्यार्थियों का सत्त्वगुण बढ़ाने हेतु अधिक ध्यान दें, जिससे उनकी शैक्षणिक एवं आध्यात्मिक उन्नति सरलता से हो सकेगी।

३. बच्चों से इष्टदेव को, गुरुदेव को एकटक देखते हुए त्राटक करवायें। इससे बच्चे अत्यंत सुगमतापूर्वक उन्नत होंगे।

४. कितना भी डरपोक बच्चा हो उसे 'जीवन रसायन' पुस्तक दें, प्राणायाम एवं ॐकार का गुंजन करना सिखायें तो वह निर्भीक हो जायेगा।

५. 'नारायण स्तुति, भगवन्नाम महिमा, ईश्वर की ओर, निर्भय नाद तथा युवाधन सुरक्षा' आदि पुस्तकों का रोज थोड़ा-थोड़ा अध्ययन करें।

६. सेवा व साधना में शीघ्र उन्नति लाने के लिए अपने जीवन में एकाग्रता, अनासक्ति एवं परहित की भावना- इन तीन बातों को अपनायें। ये तीन बातें उन्नति की कुंजियाँ हैं।

७. जिसके जीवन में साधना है उसमें सेवा का सद्गुण आ ही जाता है और जो तत्परता से सेवा करता है उसका साधना में भी मन लग जाता है।

प्रयागराज अर्ध कुंभ २००७

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

माघ मकर गत रबि जब होई।
तीरथपतिहिं आव सब कोई॥

'माघ में जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं, तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग को आते हैं।'

प्रयागराज में माघ मास के दिनों में अर्ध कुंभ के दौरान १९ से २३ जनवरी तक ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी का सत्संग संपन्न हुआ।

मुदमंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

संत समाज स्वयं चलते-फिरते तीर्थराज हैं। प्रयागराज में इन तीर्थराज के पधारने से अनुपम छटा निर्मित हुई। प्रतिदिन दो सत्रों में संतश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी की रसधार बहती थी। तुलसी मार्ग, सेक्टर ४ में निर्मित विशाल पंडाल खचाखच भरा रहता था। प्रमुदित-आनंदित कर देनेवाली पूज्यश्री की मंगलमयी अमृतवाणी के श्रवण में सभी मंत्रमुग्ध थे।

विविध प्रकार के झंझटों-दुःखों से युक्त जीवन को झंझटप्रूफ, दुःखप्रूफ बना देनेवाले ब्रह्मज्ञान की सरिता बहाते हुए प्रश्नवाचक लहजे में पूज्यश्री ने कहा : ''शरीर मरेगा कि तुम मरोगे ? बीमारी शरीर को होती है कि तुमको होती है ? दुःख मन में होता है कि तुममें होता है ? दुःख आता है - चला जाता है, तुम चले जाते हो क्या ? बीमारी आती है चली जाती है, तुम चले जाते हो क्या ? ऐसा ज्ञान सबको मिल जाये, इसीलिए कुंभ का मेला होता है।''

त्रिवेणी में स्नान करनेवाले श्रद्धालुओं को एक और त्रिवेणी में स्नान करने की प्रेरणा देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''गंगाजी ज्ञान का प्रतीक हैं, यमुनाजी भक्ति का और सरस्वतीजी विद्या का- इस त्रिवेणी में भी गोता लगायें। बाहर की त्रिवेणी में शरीर नहाये और अंदर की त्रिवेणी में सत्संगी नहायें, तब आये मोक्ष का द्वार !''

पूज्यश्री ने समुद्र-मंथन की तात्त्विक व्याख्या करते हुए बताया : ''अमृत की प्राप्ति के लिए होनेवाला देवासुर संग्राम अपने भीतर भी हो रहा है। गोस्वामीजी के कथन को उद्धृत करते हुए पूज्यश्री ने कहा :

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मंदराचल है और संतजन देवता हैं, जो ब्रह्मरूपी समुद्र को मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं। भक्ति ही उस कथारूपी अमृत की मधुरता है।

सुमति ही देवता हैं, कुमति ही असुर हैं । विवेक ही मथनी है और प्राण-अपान ही रस्सी है। संसार ही सागर है और विचार ही क्षीर-सागर है । इड़ा नाड़ी चंद्रमा है, पिंगला सूर्य है । सुषुम्ना ही देवगुरु बृहस्पति हैं । आत्मा ही कच्छप है। संतजन ही हलाहल पीनेवाले शिव हैं। ज्ञान ही अमृत है । शरीर ही घड़ा है, जिसमें ज्ञानरूपी अमृत भरा है। सुरति ही लक्ष्मी है, शब्दब्रह्म ही विष्णु हैं। संकल्प ही इन्द्रपुत्र जयंत है। मन ही इन्द्र है। अहंकार ही बलि है । विषय ही वारुणी है । इन्द्रियाँ ही अप्सराएँ हैं। इन सबका इसी शरीर में स्थान है परंतु मूल उद्देश्य ज्ञानरूपी अमृत का पान कर अपने अमरस्वरूप में प्रतिष्ठित होना है।''

२२ जनवरी को भंडारा सम्पन्न हुआ जिसमें कुंभ में आये हजारों साधु-संतों को सादर आमंत्रित किया गया । भोजन-प्रसाद के साथ तिल के लड्डुओं का पैकेट, आँवला चूर्ण, कंबल व दक्षिणा आदि वितरित किये गये।

इसी कार्यक्रम के दौरान यहीं प्रयाग में ही ३० जनवरी से १ फरवरी तक 'शक्तिपात ध्यान योग शिविर' के आयोजन तथा २ फरवरी को 'माघी पूर्णिमा दर्शन कार्यक्रम' की घोषणा की गयी।

२६ जनवरी को एक दिवसीय सत्संग समारोह **सतना (म.प्र.)** में हुआ । पहली बार पधारे पूज्यश्री के शुभागमन से यहाँ के श्रद्धालुओं में अपूर्व उत्साह व संत प्रेम देखा गया । अल्प समय में ही द्रुत गति से सारी तैयारियाँ पूरी की गयीं । २६ जनवरी की शाम यहाँ पूर्णाहुति करके पूज्यश्री **रीवा (म.प्र.)** पहुँचे, जहाँ दो दिवसीय सत्संग कार्यक्रम संपन्न हुआ।

इसके पश्चात् पूज्यश्री पुनः प्रयागराज पहुँचे । पूनम दर्शनवालों को विशेष श्रम न पड़े इसलिए २ फरवरी की शाम ४ से ५.३० तक **दिल्ली** में, रात्रि ७.३० से **अमदावाद** में पूनम दर्शन कार्यक्रम देने की घोषणा पूज्यश्री ने की।■

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

१४ से १८ फरवरी २००७ शिवरात्रि ध्यान योग साधना शिविर नासिक (महा.) में।

फोन : ०२५३-२३४५४४०, २३४२३४०.

'ऋषि प्रसाद' वार्षिक सम्मेलन में पूज्यश्री का उद्बोधन

१५ जनवरी को 'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों का वार्षिक सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसमें पूज्यश्री ने अपने आत्मीयतापूर्ण उद्बोधन में कहा : ''मेरे गुरुदेव १० महीने तो समाज में सत्संग आदि के द्वारा सद्विचारों के प्रचार-प्रसार की सेवा करते थे और २ महीने नैनीताल के जंगलों में, आश्रम में एकांतवास में रहते । वहाँ भी वे महापुरुष ८० साल की उम्र में 'युवाधन सुरक्षा, महान नारी' जैसी पुस्तकों की गठरी सिर पर उठाकर निकल पड़ते थे। पहाड़ी से नीचे उतरते, फिर दूसरी पहाड़ी पर चढ़ते। इसमें कितने घंटे लगते ! फिर गाँव के लोगों को इकट्ठा करते, थोड़ा सत्संग सुनाते और किशमिश का प्रसाद देकर पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा देते। इतना श्रम करके जिन महापुरुषों ने शास्त्रों का प्रसाद लोगों तक पहुँचाया, उन्हीं महापुरुषों की कृपा-प्रसादी सत्संग के रूप में, 'ऋषि प्रसाद' के रूप में, घर-घर अभी भी पहुँच रही है।

मुझे तो लगता है कि मेरे गुरुजी के श्रम से आपका श्रम कम है लेकिन आपकी सेवा दूर तक पहुँचती है। १७-१७ लाख घरों में, कई विद्यालय-महाविद्यालयों, वाचनालयों, कार्यालयों में 'ऋषि प्रसाद' जाती है। एक 'ऋषि प्रसाद' अगर १०-२० आदमी भी पढ़ते हैं तो कितनों तक सेवा पहुँच गयी ! मेरे गुरुजी की सेवा का तो बीज था। मैंने थोड़ा पौधा लगाया और तुमने उसे वटवृक्ष बनाने का बीड़ा उठाया है । ऋषियों-संतों की वैदिक संस्कृति का प्रसाद लोगों तक पहुँचाने के दैवी कार्य में जो संलग्न हैं, उन्हें मैं भगवान भोलेनाथ की ओर से बधाई देता हूँ :

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता॥

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है।'

वे
कहते हैं...

'ऋषि प्रसाद' की सेवा से अभिभूत हृदयों के उद्‌गार

'ऋषि प्रसाद' पढ़ने से अनेक लोगों के गुटखा, सिगरेट, शराब आदि व्यसन तथा मांसाहार आदि बुरे खान-पान छूट गये और घर-घर खुशहाली छा रही है। जो काम व्यसनमुक्ति के लिए करोड़ों रुपये खर्च करने से नहीं होता वह बापूजी की दुआ पल भर में कर देती है। आज 'ऋषि प्रसाद' पढ़कर, बापूजी से दीक्षा व संकल्प लेकर लाखों-लाखों व्यसनी व्यसनमुक्त हो गये हैं। 'ऋषि प्रसाद' बाँटने की सेवा से हमें सुंदर समाज के निर्माण का संतोष मिल रहा है।

– प्रेमानंद सिंह व मिथिलेश कुमार, पटना (बिहार)।

पाँच साल पहले मुझे 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका बाँटने की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं ७० वर्ष का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी हूँ और आँखों की रोशनी कम होने के कारण मुझे नजदीक से दिखायी भी नहीं देता। लेकिन बापूजी की कृपा से मैं सुबह नित्यकर्म करके साइकिल लेकर यह संकल्प लेकर निकलता था कि पाँच-छः सदस्य बनाकर ही नाश्ता करूँगा और गुरुकृपा से दोपहर तक लक्ष्य पूरा करके ही लौटता था। मेरे सेवाधारी भाई-बहनो ! आयु व स्वास्थ्य की क्या मजाल कि वह गुरुसेवा के दैवी कार्य में बाधा बन सके ?

– राममूर्ति शर्मा, संगरूर (पंजाब)।

'ऋषि प्रसाद' में दिये गये मंत्रों से बहुत लोगों को अच्छे-अच्छे परिणाम मिले हैं तथा 'ऋषि प्रसाद' के साथ दिया जानेवाला निःशुल्क प्रसाद - 'ग्रहदोष (ग्रहबाधा) निवारक यंत्र' घर-घर सुख-शांति पहुँचा रहा है। निःशुल्क 'नेत्रबिन्दु' के प्रसाद से लोग नेत्ररोगों से छुटकारा पा रहे हैं।

– कु. संगीता मेमाने, पिंपलगाँव जि. नासिक (महा.)।

किसीके द्वारा मुझे 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका मिली। पढ़कर मुझे यह इतनी अच्छी लगी कि मैंने संकल्प लिया कि 'मैं भी यह 'ऋषि प्रसाद' अन्य लोगों तक पहुँचाने की सेवा करूँगा।' इस सेवा से हमें इतनी तृप्ति व संतुष्टि मिली कि कुछ ही समय में मेरे सभी परिवारजनों ने एक-एक करके दीक्षा ले ली।

मेरा पुत्र थलसेना (आर्मी) में है। कारगिल युद्ध के दौरान वह युद्ध-क्षेत्र में ड्यूटी पर था। उसकी छावनी में ४७ सैनिक थे। युद्ध जोर-शोर से चल रहा था और वहाँ बर्फ गिर रही थी। उसकी माँ चिंतित होकर घर में बैठे-बैठे गुरुमंत्र का जप कर रही थी। उधर बेटे को हुआ कि कोई याद कर रहा है, घर पर फोन करूँ। वह एक मित्र के साथ छावनी से नीचे आया। वह माँ से फोन पर बात करके लौटने ही वाला था कि उसे पता चला कि भूकम्प के एक बड़े झटके से उनकी छावनियाँ गिर गयी हैं। यदि मेरा बेटा वहाँ होता तो उसकी क्या हालत हो गयी होती ! कैसे-कैसे जानलेवा प्रसंगों से गुरुदेव रक्षा करते हैं ! इसीसे गुरुजी की अमृतवाणी 'ऋषि प्रसाद' व सत्साहित्य की सेवा मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है।

– रमेश कुमार सिंह, वैशाली (बिहार)।

मुझे एपेंडिक्स की तकलीफ हुई तब डॉक्टरों ने तत्काल ऑपरेशन की सलाह दी और कहा कि ऑपरेशन न कराने पर १५ दिन के अंदर कुछ भी हो सकता है। परंतु तभी अक्टूबर २००५ की 'ऋषि प्रसाद' में इसे दूर करने हेतु ७ दिन का एक प्रयोग छपा, जिसे करने से मैं पूर्णतः व्याधिमुक्त हुआ। 'ऋषि प्रसाद' कैसी-कैसी युक्तियाँ हमारे लिए ले आती है ! व्याधिमुक्त होने के बाद मेरा सेवा का उत्साह दुगना हो गया है।

– राधेश्याम निर्मलकर, धर्मपुरा, रायपुर (छ.ग.)।

(और भी अनेक उद्‌गार हैं, जिन्हें पढ़ने हेतु प्रतीक्षा कीजिये अगले अंकों की।) ■

घर-घर में हो 'ऋषि प्रसाद'

आगरा (उ.प्र.) गोटेगाँव जि. नरसिंहपुर (म.प्र.)

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) बालाघाट (म.प्र.)

सिवनी (म.प्र.) दादर-मुंबई (महा.)

नासिक (महा.) एवं लुधियाना (पंजाब) में 'ऋषि प्रसाद स्नेह सम्मेलन'।